

मध्य-प्रदेश का लोक-नृत्य

भारत के लोक-नृत्य



विश्वमित्र शर्मा

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

FOLK DANCES OF INDIA

by

Vishwa Mitra Sharma

Rs. 2.50



प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली

शाखाएं
हौज खास नई दिल्ली
चौड़ा रास्ता जयपुर
माई हीरां गेट जालन्धर
बेगमपुल रोड मेरठ
विश्वविद्यालय क्षेत्र चण्डीगढ़

मूल्य
प्रथम संस्करण रुपए 2.50
1961

मुद्रक
दि सैण्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस
कमला नगर दिल्ली 6



क्रम



1 परिचय

पण्डित नेहरू ने 'दी डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में भारत की विविधता के सम्बन्ध में लिखा है—

"हिन्दुस्तान में अपार विविधता है। यह प्रकट-सी वस्तु है। यह इस तरह सतह पर स्पष्ट है कि इसे कोई भी देख सकता है। इसका सम्बन्ध उन भौतिक वस्तुओं से भी है जिन्हें हम ऊपर से भी देख सकते हैं और कुछ मानसिक अभ्यासों और स्वभावों से भी है। बाहरी ढंग से देखें तो उत्तर-पश्चिम के पठान में और धुर-दक्खिन के तमिल में बहुत कम ऐसी बातें हैं जिन्हें आपस में समान कहा जा सकता है। नस्ल की दृष्टि से ये जुदा-जुदा हैं यद्यपि हो सकता है कि दोनों के बीच कुछ ऐसे धागे हों जो एक-दूसरे को जोड़ रहे हों। सूरत-शक्ल में, खान-पान में और पहनावे में ये जुदा जुदा हैं और भाषा में तो हैं ही। उत्तर-पश्चिम के सरहदी सूबे में मध्य एशिया की हवा पहुँची हुई है और यहाँ के रीति रिवाज हमें हिमालय के दूसरी ओर के देशों की

भासिया, कोंड कुट्टिया, कोंड माड़िया, गदावा, साम्रोरा, भाटडा, मोंदो, परधान, भूइयाँ, मेंग्गा, पाडिया, गोंड, पुमांग, मेरिया, धुलिमा, नागा आदि अनेक ऐसी जन-जातियाँ हैं जो आज भी अलग दिखाई दे जाती हैं।

इन जन-जातियों में नाच-गान के तरीके भी अलग हैं। शरीरों को सजाने के तरीके भी अलग हैं। इनकी बोलियाँ और रीति-रिवाज तो अलग हैं ही—इनकी कहावतें और इच्छाएँ भी अलग हैं।

कोई कहता है—

> चाँद सूरज के पइयाँ लागू
> तिरिया जनम मत दे।

तो दूसरा कहता है कि जिस घर में लड़की नहीं उस घर में सदा अन्धकार ही रहता है चाहे वह किसी धनी का घर ही क्यों न हो।

परन्तु यह सब-कुछ कहने से हमारा यह अर्थ कदापि नहीं है कि भारत में केवल विविधता ही है—सत्य तो यह है कि भारत में विविधता होने के उपरान्त भी विचित्र-सी सांस्कृतिक एकता है। यदि झूमर नृत्य राजस्थान में है तो वह पंजाब, गुजरात और मालवा में भी है। इसी प्रकार यदि गरबा नृत्य महिलाओं को गुजरात में उन्मादित कर देता है, तो वह मालवा और राजस्थान में भी उन्हें उल्लसित किए बिना नहीं रहता। पंजाब का गिद्धा, महाराष्ट्र की टिपरी दोनों में गरबा की समानता प्राप्त है। विविधताओं में एकता होने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि भारत के सांस्कृतिक पक्ष में पूर्णरूपेण समानता ही नहीं बल्कि तादात्म्य है।

माद दिलाते हैं । पठानों के देहाती नाचों में और रूस के कज्जाकों के नाचों में अद्‌भुत समानता है ।"

वह और आगे लिखते हैं—

"पठान और तमिल दो अलग अलग छोर की मिसालें हैं और अनेक लोग इनके बीच में पड़ते हैं । सभी के रूप जुदा हैं, लेकिन जो बात सबसे बढ़कर है वह यह कि सभी पर हिन्दुस्तान की अपनी छाप है । यह एक दिलचस्प बात है कि बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, आंध्र, उड़िया असमी मलयाली, सिन्धी, पंजाबी, कश्मीरी, राजपूत और बीच के लोगों का एक बड़ा टुकड़ा जो हिन्दुस्तानी बोलता है—इन सबने सैकड़ों वर्षों से अपनी विशेषताएँ कायम रखी हैं ।"

इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि भारत एक विशाल भूखण्ड है और आज की दुनिया का एक नया उगता सितारा है । भारत की विशालता उसके जलवायु की विविधता, अनेक बोलियों और दूसरी बाह्य सभ्यताओं के प्रभाव का यह फल है कि भारत में अनेक तरह के लोग हैं । अनेक सांस्कृतिक दल हैं । अनेक जन-जातियाँ हैं । अनेक तरह के फिर्के हैं । उनकी विभिन्न बोलियाँ हैं । उनका रहन-सहन अलग है । उनका खान-पान अलग है, खान-पान का तरीका अलग है । उनके रीति रिवाज अलग हैं और उनकी शक्ल-सूरत अलग है । इतना ही नहीं, वे अलग अलग तरह के वातावरण में रहना पसन्द करते हैं । यदि ऊपर से स्पष्ट दीखने वाले भेदों से आगे चलकर उनकी उत्पत्ति और उनके वंश का पता चलाएँ तो भी यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में अनेक तरह के लोग हैं । उन्हें अलग सांस्कृतिक दलों में भी बाँटा जा सकता है । इन कोल, भील, संथाल, मुड़िया,

भासिया, कोंड कुट्टिया, कोड माड़िया, गदावा, साम्रोरा, माटड़ा, गोंदो, परधान, भूइयाँ, बैगा, पाँडिया, गोंड, पुमांग, मेरिया, घुलिका, नागा आदि अनेक ऐसी जन जातियाँ हैं जो आज भी अलग दिखाई दे जाती हैं।

इन जन-जातियों में नाच-गान के तरीके भी अलग हैं। शरीरों को सजाने के तरीके भी अलग हैं। इनकी बोलियाँ और रीति-रिवाज तो अलग हैं ही—इनकी कहावतें और इच्छाएँ भी अलग हैं।

कोई कहता है—

चाँद सूरज के पइयाँ लागू
तिरिया जनम मत दे।

तो दूसरा कहता है कि जिस घर में लड़की नहीं उस घर में सदा अन्धकार ही रहता है चाहे वह किसी धनी का घर ही क्यों न हो!

परन्तु यह सब-कुछ कहने से हमारा यह अर्थ कदापि नहीं है कि भारत में केवल विविधता ही है—सत्य तो यह है कि भारत में विविधता होने के उपरान्त भी विचित्र-सी सांस्कृतिक एकता है। यदि झूमर नृत्य राजस्थान में है तो वह पंजाब, गुजरात और मालवा में भी है। इसी प्रकार यदि गरबा नृत्य महिलाओं को गुजरात में उन्मादित कर देता है, तो वह मालवा और राजस्थान में भी उन्हें उल्लसित किए बिना नहीं रहता। पंजाब का गिद्दा, महाराष्ट्र की टिपरी दोनों में गरबा की समानता प्राप्त है। विविधताओं में एकता होने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि भारत के सांस्कृतिक पक्ष में पूर्णरूपेण समानता ही नहीं बल्कि तादात्म्य है।

जिस प्रकार भारत के अनेक स्थानों की जलवायु में अन्तर है अर्थात् कई तरह की जलवायु है, लोगों का अनेक तरह का स्वभाव है—यही सब-कुछ हमारे लोक-नृत्यों में भी स्पष्ट है।

विभिन्न प्रदेशों के हिसाब से ही देखिए—असम के समीप ही नागा प्रदेश और मणिपुर के पहाड़ी इलाके हैं। यहाँ के सर्व-साधारण के नृत्यों में या तो शिकार का अभिनय है, या फिर नर्तक लोग शरीर के ऊपर के हिस्से को जोर से हिलाते-डुलाते और फिर एकाएक बैठ जाते हैं। इसका मतलब क्या है—यही कि यह क्षेत्र पहाड़ी है और इसमें घने जंगल हैं। कभी-कभी यहाँ भयंकर तूफान आते हैं, तब पेड़ बुरी तरह झटके खाने लगते हैं और फिर तूफान उनको उखाड़ फेंकता है—यही क्रिया वहाँ के लोगों के नृत्यों में भी है। वे शरीर के ऊपर का हिस्सा जोर से हिलाते हैं और फिर एकाएक बैठ जाते हैं। बैठ जाना पेड़ के उखड़कर गिर जाने की ओर इशारा है।

इसी तरह नागा लोगों के नृत्यों में लड़ाई करने या शिकार करने का दृश्य होता है। वहाँ के जंगलों में जंगली जानवर शेर आदि बहुतायत से मिलते हैं। उन्हें उनसे लड़ना पड़ता है—बस, यही भावना और यही क्रिया उनके नृत्यों में पाई जाती है।

इसी प्रकार मैदानी इलाकों में भी अनेक तरह के नृत्य हैं। कहीं के नृत्यों में नदियों की-सी चपलता है तो कहीं के नृत्यों में मैदानों की-सी शान्ति। अर्थात् जहाँ भारत में अनेक जातियाँ, कबीले, फिर्के और जन-जातियाँ हैं—उसी तरह यह अनेक तरह के लोक-नृत्यों का भारी खजाना भी है—और सदियों से ऐसा ही है।

और लीजिए—पंजाब के लोगों को देखिए—वे मेहनती हैं,

पुरुषार्थी हैं, उनमें जीवन का उल्लास ज्यादा है, जिन्दादिली है, जवांमर्दी है—उनका प्रसिद्ध भांगड़ा नृत्य इन्हीं बातों का जीता-जागता नमूना है।

इसी तरह राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, केरल, आंध्र आदि अन्य प्रदेशों के नृत्य हमारे देश के नृत्यों की समृद्धि के प्रतीक हैं। हिमाचल प्रदेश का गद्दी चरवाहा नाचता हुआ जब यह गाता है—

'आहे धूपड़ी छाया पारे '

तो दर्शक को फौरन पता चल जाता है कि नर्तक पहाड़ी इलाके का है, जहाँ बर्फ और बादल छाए रहते हैं। इस सब का भाव यही है कि जहाँ हमारे देश में विविधता है वहाँ लोगों के मनोरंजन के साधन—नृत्यों में भी विविधता है और भारत उनका एक ऐसा खजाना है जो कभी समाप्त नहीं होता, जिसका जादू कभी कम नहीं होता, सदा बढ़ता ही रहता है।

भारत के प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर ने ठीक ही कहा है कि हर भारतीय नर्तक है। इस बात का भाव इस तरह समझ में आ सकता है कि 85 प्रतिशत से कुछ अधिक भारतीय खेती या खेती से जुड़े धन्धों पर आश्रित हैं। यही हमारे देश का अधिकांश भाग है। इस तरह हमारे देश की जनता का नृत्य इन्हीं के पास है, अर्थात् लोक-नृत्य ही जनता के नृत्य हैं। जनता के ये नृत्य जनता के प्रतिदिन के कार्यों से ही सम्बन्धित हैं। यदि हमारे देश की 85 प्रतिशत जनता खेती से सम्बन्धित है तो यह बात स्वयं सिद्ध है कि यहाँ के नृत्यों का भी खेती से ही अधिक सम्बन्ध होगा।

अतः भारत के अधिकांश लोक-नृत्य खेती के कामों से सम्बन्धित

हैं। कहीं खेत की जुताई और फसल की तैयारी के लिए खुशियाँ मनाई जाती हैं और वरुण देवता की मनौती होती है। उनसे



खलिहान-नृत्य

प्रार्थना की जाती है, 'हे वरुण देवता ! हमारे खेतों को अपनी मीठी रसधार से सींचना। तुम्हारे ही प्रताप से उनका पोषण होगा, उनमें जीवन पड़ेगा।' जब फसलें पक जाती हैं तो सारे भारत के किसान आज भी टोलियों में बाहर आ जाते हैं और ढोल बजाकर नाचते-गाते फसल के पकने की सूचना देते हैं। फसलें पकी खड़ी हैं, चारों ओर खेतों में सोना बिखरा हुआ है। प्रकृति का भरत् पुत्र किसान ढोल-ढमक्का लिए खुशी प्रकट करता है। उसने जो पसीना बहाया था, वह आज फल

आया है—आज उसकी मेहनत सफल हुई है। वह नाचता है, गाता है और खुशियाँ मनाता है। यही उसकी सरलता है, सरसता है, यही उसका जीवन है।

भारत के जितने प्रमुख नृत्य हैं फसल के पकने से उनका सम्बन्ध है। फसलें पक जाती हैं तो असम का किसान नाच उठता है, उसी को हम 'साम्बालिम' लोकनृत्य कह देते हैं। जब प्रकृति अपने यौवन पर होती है, फसलें पूरे उठान पर होती हैं तो बिहारी किसान नाच उठता है, उसी को हम 'चौ' लोक-नृत्य कह उठते हैं। जब सावन की कारी-कजरारी घटाएँ आसमान में छा जाती हैं और किसान का दिल बल्लियों उछलने लगता है तो उत्तर-प्रदेश का वातावरण 'कजरी' से मुखरित हो उठता है। उस समय उन लोगों के मुँह से बरबस 'कजरी' के मीठे गाने फूट पड़ते हैं और लोक-ललनाएँ 'झूला' डाल लेती हैं। अहा, उस समय स्वर्ग से देवता उस दृश्य को देखने के लिए उतर पड़ते हैं। बरखा की नन्ही शीतल फुहार पड़ चुकी, धरती का घाम दूर हो गया और उसने हरी चुनरिया ओढ़ ली—उस समय एक ओर 'कजरी' की धूम है, तो दूसरी ओर झूले की अलमस्त हिलोर! समीप ही औरतों की दूसरी मण्डली रसलीन हो नाच-गा रही है—एक ओर झूला गगन में हिलोर भरता है तो दूसरी टोली नृत्य और गीत का मधुर रस उसमें उड़ेल रही है जिससे वातावरण में अनोखी मस्ती भर जाती है।

पंजाब के भांगड़े को खेत और उसके मालिक किसान से कैसे अलग किया जा सकता है, भाँगड़ा जितने अधिक दिन चलता है, शायद ही कोई दूसरा नृत्य-समारोह इतने दिन चलता हो। गेहूँ बोने के समय किसान बाहर निकल आते हैं।

ढोलक मासा बोध में रहता है। ढोलक पर थाप पड़ते ही किसान उछलने लगता है, और बैसाखी का पुण्य पर्व आने तक हर पूर्णिमा को पंजाब के हर गाँव में ढोलक की थाप और लोगों में मस्ती भरे नृत्य की ताल लय के साथ सुनाई देती है। अर्थात् फसल बोने से लेकर फसल कटने तक भांगड़ा चलता है और प्रायः भारत के अधिकांश लोक-नृत्य फसल बोने और उसे काटकर घर लाने से सम्बन्ध रखते हैं। किसान होकर भी जो नाचा-गाया नहीं, उसका जीवन व्यर्थ है। उड़िया लोक-गीत इस भावना को यों प्रकट करता है—

हलिया होइण त न गाइलुगीत
सुनार नोगल कु जे रूपार जुमाली
हीरामाणकर बलद
हलिया वन माली हे

—'अरे, तूने किसान होकर भी गीत नहीं गाया। तेरा सोने का हल है और चाँदी का जुआ, हीरों और मणियों का बैल है। किसान स्वयं कृष्ण भगवान् है।'

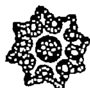
हमारे अधिकांश लोक-नृत्यों का सम्बन्ध फसल बोने और काटने अर्थात् खेत और खेती से है, इस बात का साक्षी यह लोकगीत है—

सरोन गूऊरे, सरोन गूऊरे
मोर रामरन इक्कासे।
भा कमैनन् भाग्यका मों मोई
मेंमे कइड पडिमानसले।

—'धान पक गया, धान पक गया।
'किसान का दिल बल्लियों उछल रहा है।

'प्राज किसान का गीत पहले से कहीं अधिक मीठा है। धान पक गया है।'

खेती ही किसान का सब-कुछ है, इसलिए उसकी हँसी-खुशी उसी से सम्बन्धित है, पर किसान जिन और अवसरों पर नाचता-गाता है वे भी उसके दैनिक कार्यों से ही सम्बन्धित हैं। उसमें भी उसके सामाजिक जीवन की झाँकी मिलती है। इनमें हमारी धार्मिक भावनाएँ भी गुँथी हुई हैं। ये हमारे रीति-रिवाजों के प्रतिबिम्ब भी हैं।



चैत्र के अन्तिम दिनों अर्थात् अप्रैल मास के मध्य में पड़ता है। यह त्योहार विशेषतया फसल कटने तथा नए वर्ष के आरम्भ से



असम की लुशाई पहाड़ियों का 'बाँस-नृत्य'

सम्बन्ध रखता है। जब प्रायः फसलें कट चुकती हैं तो यह त्योहार पड़ता है। इन दिनों लोग खुशियों के मारे फूले नहीं समाते। कोई भी अपने घरों में बन्द नहीं रहता। सब लोग बाहर नदियों, तालाबों के किनारे चले जाते हैं। इतना ही नहीं, वे अपने साथ अपने पशुओं को भी ले जाते हैं। उनके खूब तेल की मालिश करते हैं और नदियों में नहलाते हैं। उन पर बैंगन और ककड़ियाँ फेंकते हैं और खूब खुश होते हैं, नाचते-गाते हैं।

यह एक विशेष त्योहार है। इसी त्योहार के नाम पर ही नृत्य का नाम पड़ा, अर्थात् जो नृत्य इन दिनों सामूहिक रूप में होता है, उसे 'बिहू' नृत्य कहते हैं।

'बिहू' सचमुच बड़ी प्रसन्नता का त्योहार है। अनाज प्राय घरों में आ जाता है—और किसान की चिन्ता मिट जाती है।

इन दिनों युवक-युवतियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक चाँदनी रातों में नाचते हैं। कल्पना कीजिए कि चाँदनी रात है, चाँद खूब खिला है और लोग खूब मस्ती में भरे हैं। एक ओर आग जल रही है और लोग बैठे खा-पी रहे हैं। दूसरी ओर युवक-युवतियों के दल मस्ती में नाच रहे हैं। पास में मादल और ढोलक बजाने वाले हैं—वे बड़े जोश से ढोल बजा रहे हैं। ढोल पर पड़ी चोट की थाप के साथ युवक-युवतियों का दल जोरों से नाच उठता है। उनमें खास जोश आ जाता है। कुछ लोग 'महार सिंगर पेपा' बजा रहे हैं। यह भैंस के सींग का बाजा होता है। बताइये ऐसे अवसर पर किसे नींद आती है! किसके मुँह पर उदासी रहती है! कौन-सा दिल खिल नहीं उठता! यह त्योहार पंजाब के बैसाखी के रूप में ही मनाया जाता है। इसे बिहू भी कहते हैं। उस दिन लोग अपने मित्रों, सम्बन्धियों को भेंट भी देते हैं।

'बिहू' नाच के साथ जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें बिहू गीत कहते हैं। 'बिहू' गीत असम के बहुत प्रसिद्ध लोक-गीत हैं। ये गीत कितने मधुर हैं—

"मैं हंसिनी बनकर तुम्हारे तालाब में तैरूँगी।
मैं मछली बनकर तुम्हारे जाल में पकड़ी जाऊँगी।
मैं तुम्हारी देह पर पसीने की एक बूँद बनूँगी।

मैं मक्खी बनकर तुम्हारे गालों पर बैठूँगी, तुम्हें तंग करूँगी।'

'बिहू' नृत्य की भावना इस गीत में बिलकुल मूर्तरूप धारण करती दिखाई देती है। युवक-युवतियों का आपस में मिलकर स्वच्छन्दतापूर्वक नाचना और खुशियाँ मनाना बिलकुल स्पष्ट हो उठता है।

लगे हाथ बर-गीत की बानगी भी देख लीजिए—

अथिर धन जीवन यौवन
अथिर एहु संसार।
पुत्र परिवार सब ही असार
कर बु काहे रिसार।
कमल दल परम चित्त चंचल
थिर नहे मिल एक।
नाहि भय भव भोगे हरि हरि
परम पद परतेक।
कतहुँ शंकर ए दुखसागर
पार कहे हृषिकेश।
सुहृ गति मति देहु शिरीपति
तत्व पथ उपदेश॥

—'भाई! जागते रहो, सावधान रहो। जीवन जल्दी चला जाएगा। गोविन्द की कृपा जल्दी नहीं मिलेगी। जिन्दगी छोटी सी है। जवानी आनी-जानी है। सब-कुछ माया है, इन पर ध्यान मत दो। दुःखों को भगा दो, अपना मन हरि के चरणों में लगाओ। इच्छाएँ फेंक दो, माया का पिंजरा तोड़ दो। शंकरदेव कहते हैं, अपना विश्वास स्वामी के चरणों में लगाओ।'

असम के जन-जीवन का एक नृत्य 'हुचजानी' अथवा 'बोहो' है, जो आदिम जाति का लोक-नृत्य है। यह विवाह के समय का प्रसिद्ध नृत्य है। वधु के घर कबीले की कुँवारी कन्याएँ एकत्रित होकर यह नृत्य करती हैं। पुरुष वर्ग भी बाँसुरी और सेरजा बजाकर तथा गाकर इस नृत्य में अपना योग प्रदान करता है। गीत में वर-वधु की प्रसंसा होती है, यदा-कदा उनको चुटकी भी ली जाती है।

असम के लोक-नृत्यों में 'खाम्बलिम' नृत्य भी काफी प्रसिद्ध है। यह नृत्य जमी कबीले का है, ये लोग कचार पहाड़ियों में रहते हैं। यह नागा दूसरे पहाड़ी नागाओं से अलग तरह के होते हैं। इनका मुख्य धंधा खेती ही है। इनके अनेक नृत्य हैं, जिनमें 'खाम्बलिम' और 'भूइरालिम' अधिक प्रसिद्ध हैं।

'खाम्बालिम' फसल की कटाई आरम्भ होने के समय का नृत्य है। उस समय सभी के दिल उल्लास से भरे होते हैं, परन्तु 'बिहू' की तरह इसमें लड़के-लड़कियाँ इकट्ठे मिलकर नहीं नाचते। उनके दल अलग-अलग रहते हैं। नर्तक अलग-अलग दो कतारों में खड़े होते हैं—अर्थात् लड़के या पुरुष अलग और युवतियाँ या औरतें अलग। ये लोग आगे-पीछे नाचते हैं, अपनी जगह और स्थिति बदलते हैं, पर कतार कभी नहीं टूटती।

'भूइरालिम' विभिन्न अवसरों पर किया जाने वाला नृत्य है। यह नाचने वालों की प्रसन्नता पर निर्भर रहता है कि कब नाचें। किसी भी खुशी के अवसर पर लड़के और लड़कियाँ दो पंक्तियों में खड़ हो जाते हैं और लड़ाई का-सा अभिनय करते हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि नागा लोग बचपन से ही योद्धा

भौर शिकारी होते हैं। उनके भनेक नृत्यों में भी ऐसी भावनाएँ भौर क्रियाएँ स्पष्ट हैं। शिकार यहां के जंगलों में श्राम हैं। वीरता नागा लोगों की रग-रग में समाई हुई है जिसकी निशानी उनके 'भाला' भौर 'कुकरी' नृत्यों में स्पष्ट रूप से मिलती है।



3

मणिपुर

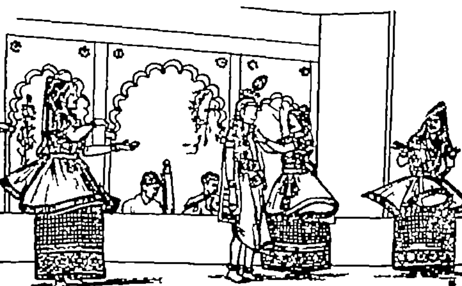


मणिपुर असम के ही समीप का एक स्थान है। भरत-नाट्यम, कत्थक और कथकली की तरह आज ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो मणिपुरी नृत्यों के विषय में कुछ न जानता हो अथवा उनका नाम न सुना हो। मणिपुर में कृष्ण-राधिका, कृष्ण-बलराम अथवा कृष्ण-चैतन्य के मन्दिर हैं। इसके साथ एक विशाल भवन होता है, जहाँ कृष्ण आख्यान को आधार मानकर नृत्य किए जाते हैं।

कहते हैं मणिपुर से ही शिव और पार्वती के ताण्डव और लास्य नृत्यों का उद्‌गम है। इस सम्बन्ध में किंवदन्ति प्रसिद्ध है कि शिव एक बार नृत्य के लिए भूमि तलाश कर रहे थे तो उन्हें मणिपुर का स्थान पसन्द आया, परन्तु वहाँ पानी भरा था। उन्होंने अपने त्रिशूल से एक ओर मार्ग कर दिया। पानी निकल गया और भूमि निकल आई। अर्थात् भूमि की उत्पत्ति की शुरूआत भी मणिपुर से ही हुई। यहाँ शिव ने जो नृत्य किया

वह 'ताण्डव' और पार्वती द्वारा जो नृत्य किया गया वह 'लास्य' कहलाया ।

यहाँ के नृत्यों में लीला अथवा रासलीला सबसे अधिक प्रसिद्ध है । इसे शिव की लीला से अपनाया गया, परन्तु आजकल



मणिपुर की रासलीला भगवान को आधारभूत मानकर की जाती है। इसे 'कितिमोपाम' अथवा 'महारास' भी कहा गया है । गोपिकाएँ कृष्ण को अबीर-गुलाल से रंग रही हैं रंग की पिचकारियों में स्वयं भी रंगराती है । इसी नृत्य को 'लाईहारोबा' भी कहा जाता है ।

कृष्ण लीला ही इन नृत्यों का आधार है । इसी का 'लाइहारोबा' भी एक रूप है । लाई का शाब्दिक अर्थ देवताओं को प्रसन्न करना है ।

'लाईहारोबा' नृत्य मन्दिर के सामने खुले स्थान पर किया जाता है और इसमें मुख्य नर्तक पुजारी और पुजारिन होते हैं। इस नृत्य में मानव की उत्पत्ति का वर्णन रहता है। 'लाईहारोबा' बहुत पुराना मणिपुर लोक-नृत्य है और यह स्पष्ट है कि मणिपुर



मणिपुर के नर्तक कलाकारों का एक दल

के अन्य अनेक लोक-नृत्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इसी से निकले हैं।

मणिपुर के इम्फाल क्षेत्र के समीप उखरूल के तंगखुल आदिवासियों का लोक-नृत्य 'खामाहोन-योहे' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस लोक-नृत्य में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का उल्लास प्रकट किया जाता है। भालों के चलाने की रीति एवम् शौर्य पूर्वक उनका प्रदर्शन कर शत्रु को किस प्रकार परास्त किया जाता है तथा विजय के उन्माद में आदिवासी किस प्रकार मस्त हो जाते हैं यही इस लोक-नृत्य की कथा है।

मणिपुर की 'मैटी' आदिम जाति का विश्वास है कि जब से संसार की उत्पत्ति हुई तभी स नृत्य का प्रादुर्भाव हुआ। नृत्य तभी से इसी रूप में प्रचलित है। इनके 'औगरी हगल चोंबा' नामक लोक-नृत्य में पुरातन युग के एक गुरु के दो शिष्यों की प्रतिद्वन्द्विता प्रदर्शित की जाती है।

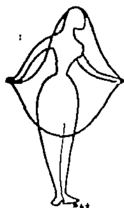
मणिपुर में मृदग को 'पुंग' कहते हैं 'चोलम' का अर्थ तीव्र गति है। 'पुग चोलम' मणिपुर के आदिवासियों का श्रेष्ठ नृत्य है। पुंग चोलम नृत्य में मृदग की थाप पर अति तीव्र गति से पद सचालन होता है और शरीर के विभिन्न अगों का तीव्र गति से परिचालन होता है। पजाब के भांगड़ा की भाँति यह नृत्य पुरुषों का उल्लासपूर्ण नृत्य है।

मणिपुरी नृत्यों में जो माधुर्य कोमलता और लास्य भावना है, वह अन्य लोक-नृत्यों में शायद ही पाई जाती हो। लोक नृत्यों में शायद इन्हीं मणिपुरी नत्यों का ही सबसे अधिक विकास हुआ है। इसीलिए इनको, लोक-भावना के रहते हुए भी पूरी तरह शास्त्रीय नृत्यों में नहीं तो उनके अतर्गत गिना जाने लगा है।

मणिपुरी नर्तक जहाँ सुन्दर होते हैं, वहाँ अच्छे नर्तक तथा

अच्छे गायक भी होते हैं। सारे असम प्रदेश के नर्तकों की पोशाक बड़ी सुन्दर और विचित्र होती है। वे सिर से लेकर पाँव तक को सजाते हैं। वे सिर में प्राय कलगी आदि लगाते हैं। सिर को सजाने के अनेक ढंग हैं। इसी तरह वे बाजू, कलाई, कमर आदि को भी सजाते हैं।





4

नागा प्रदेश

असम और मणिपुर के साथ ही नागा प्रदेश है। इस प्रदेश के निवासी भारत के आदिवासी हैं। आदिवासियों के विभिन्न मनोहारी लोक-नृत्य हैं।

नागा प्रदेश के तुएनसांग पहाड़ी क्षत्र के लोक-नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

इस प्रदेश का विजय-नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध है जो 'सेरो लोप फुकले' के नाम से प्रसिद्ध है। सेरो लोप फुकले का अर्थ युद्ध में विजय है। पुरातन काल में यह लोक-नृत्य उस समय किया जाता था, जब योद्धा युद्ध में विजय प्राप्त करके आते थे। वर्तमान काल में यह नृत्य फसल के कटने पर किया जाता है।

फसल कट चुकी है। सभी कबीले के लोग सज-सवरकर रंग बिरंगी साज-सज्जा में सुसज्जित होकर आ गए हैं। ढोल-धमामे

सज गए हैं। सारे सया दाश नामक प्राचीन शौर्यपूर्ण नृत्य-गीत गाए जा रहे हैं। नर्तक अपने सिरों पर पंखों से आच्छादित



नागा सैनिक-नृत्य की मुद्रा में

रंग बिरंगी पोशाकों सहित आ गए हैं। प्रत्येक के हाथ में ना-

है। 'तेरी सोप फुकले' नृत्य गतिमान है। दर्शक का हृदय इस नृत्य को देखकर शौर्य से विरोहित हो उठता है।

नववर्ष के अवसर पर नागाओं का 'तेरहून्ये' लोक-नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस नृत्य के साथ जो गीत गाए जाते हैं उनमें



नागा नर्तकों का एक दल

नववर्ष में फसल, विजय, शान्ति तथा समृद्धि की कामना की जाती है।

नागाओं का 'सेकेरेनी' लोक-नृत्य अत्यन्त महत्त्व का और रोचक होता है। इस नृत्य को सामूहिक भोज अथवा ज्योनार के समय किया जाता है। गाँव अथवा कबीले का मुखिया जब

कभी सम्पूर्ण कबीले को अथवा गाँव को ज्योनार पर निमन्त्रित करता है तो 'गेरा' (पत्थर की एक विशाल तिकोनी शिला, जो मुखिया की समृद्धि को प्रतीक मानी जाती है) के चारों ओर चक्कर लगाकर यह नृत्य किया जाता है और मुखिया की समृद्धि के गीत गाए जाते हैं।





5

बंगाल

बंगाल यों तो कलाओं का घर है। परन्तु हमारी दासता के युग में हमारा इतना पतन हुआ कि शिक्षित बंगाली भी यह समझने लगे कि बंगाल के पास लोक-नृत्य नाम की कोई चीज नहीं। परन्तु इसका श्रेय गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को है जिन्होंने अपना प्रसिद्ध केन्द्र शान्तिनिकेतन संथाल क्षेत्र के बीच में बनाया और इस भावना को दूर किया। संथालों और मणिपुर आदि नृत्यों की खोज उन्होंने ही की। इससे लोगों को पता चला कि बंगाल जहाँ लोक-संगीत और लोक-गाथा का भण्डार है, वहाँ वह लोक-नृत्य में भी पीछे नहीं है। उन्होंने इन कलाओं के विकास में भारी योग दिया।

बंगालियों में लोक-नृत्यों के प्रति प्रेम जागृत करने का श्रेय श्री गुरु सदय दत्त आई० सी० एस० को भी है। उन्होंने बंगाल में व्रतचारी आन्दोलन का श्रीगणेश किया। यह आन्दोलन एक प्रकार का सांस्कृतिक आन्दोलन था। व्रत का अर्थ स्पष्ट है और

चारी अर्थात् उस ध्येय की प्राप्ति में प्रयत्नशील। व्रताचारी लोग जीवन को एकांगी नहीं समझते। उनका विश्वास है कि कला, जीवन और शरीर दोनों से सम्बन्धित है। कला का दोनों पर प्रभाव है और जीवन तथा शरीर का कला पर।

व्रताचारी के लिए पाँच व्रत जरूरी हैं—ज्ञान, श्रम, सत्य, एकता अथवा समष्टि और प्रसन्नता। प्रसन्नता के लिए नृत्य का आयोजन किया गया और व्रताचारी के 'कृत्य' और 'नृत्य' दो कर्तव्य निश्चित किए गए। यह आन्दोलन स्कूलों में चालू किया गया—जिससे युवकों और युवतियों में नृत्य के प्रति दिलचस्पी उत्पन्न हुई।

श्रीदत्त ने व्रताचारी आन्दोलन के लिए बहुत काम किया। इससे जहाँ युवकों अर्थात् बंगाल की नई सन्तति में श्रम और ज्ञान के प्रति चेतना जागृत हुई, वहाँ उनमें नृत्य के प्रति प्रेम भी पैदा हुआ। बंगाल में लोक-नृत्यों के पुनर्जागरण के लिए सभी विद्वानों ने व्रताचारी आन्दोलन की बहुत प्रशंसा की है।

बंगाल चैतन्य महाप्रभु का भी बड़ा ऋणी है। चैतन्य देव ने जहाँ बंगाल में एक नवीन चेतना पैदा की वहाँ 'कीर्तन' नामक नृत्य का भी आधुनिक रूप दिया। 'कीर्तन' भगवान् की पूजा का ही एक नृत्य है। इसका सबसे बड़ा महत्त्व इस बात में है कि 'कीर्तन' नृत्य में चाहे जितने व्यक्ति शामिल हो सकते हैं। बच्चा-बूढ़ा, राजा-रंक सभी को इसमें इकट्ठे भाग लेने का अधिकार है। यह सारे समाज का नृत्य है। इसी बात से पता चलता है कि यह कितना सरल नृत्य होगा। इसमें किसी नर्तक पर न पोशाक की पाबन्दी है और न किसी दूसरी चीज की।

'कीर्तन' नृत्य में भक्त लोग एक गोल घेरे में खड़े होकर नृत्य

करते हैं। ढोल बजता है और उसकी थाप के साथ नर्तक अपने हाथ ऊपर उठाते तथा गिराते हैं। साथ में धार्मिक संगीत चलता है। ढोल को 'खोल' कहते हैं जो विशेष प्रकार का होता है। कई बार यह नाचती-गाती हुई मण्डली बाजार में भी निकलती है। उस समय इसे नगर कीर्तन कहते हैं।

बंगाल के मैमनसिंह जिले में एक और नृत्य बड़ा प्रसिद्ध है जिसमें नर्तक नकली चेहरा लगाकर महादेव और काली का अभिनय करते हैं। काली भक्ति बंगालियों में बहुत अधिक है। इस नृत्य के लिए और किसी विशेष आयोजन या पोशाक की आवश्यकता नहीं होती। गाँव का बढ़ई आम की लकड़ी का एक नकली चेहरा बना देता है जिसे वहीं का कुम्हार रंगकर आकर्षक रूप दे देता है।

महादेव का नृत्य करने वाला कमर में केवल एक जाँघिया पहन लेता है और सारे शरीर पर भस्म रमा लेता है। उसके गले में दुहरी रुद्राक्ष की माला भी रहती है। सिर पर नकली बाल भी बाँधता है जो घुटनों तक लटकते हैं। शिव का अथवा सन्यासी का हिन्दू शास्त्रों में यही रूप बताया गया है। तब वह नकली चेहरे को अपने दोनों हाथों में बहुत श्रद्धापूर्वक पकड़कर दर्शक मण्डली की ओर बढ़ता है और उसके सामने अपना मस्तक झुकाता है—और इतना झुकाता है जब तक कि भूमि से न छू जाए। इसका भाव यह है कि जिस देवता का अभिनय वह करने लगा है उसके प्रति उसको कितनी अधिक भक्ति और श्रद्धा है। उसके बाद आदमी उस चेहरे को बाँध देते हैं। चेहरे के माथे पर शिव का तीसरा नेत्र बना रहता है। जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इसी तीसरे नेत्र से शिव ने कामदेव को भस्म

किया था। उसके बाद नर्तक-शिव के एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में शंख पकड़ा दिया जाता है। फिर धीरे-धीरे नृत्य आरम्भ होता है और तेजी पकड़ता जाता है और अन्त में नर्तक थककर गिर पड़ता है।

उस समय काली आती है। काली वाला चेहरा नीले रंग का रंगा हुआ होता है—जबकि शिव का सफेद। काली के मुँह के दोनों ओर खून बहता हुआ दिखाया जाता है जो उसकी ठोढ़ी तक बह रहा होता है। काली के दाएं हाथ में एक चमदार तलवार रहती है। काली थान से आकर भूमि पर पड़े शिव की छाती पर पाँव रखती है और उसके बाद धीरे धीरे नृत्य आरम्भ करती है। अन्त तक उसमें ताण्डव की सी तेजी आ जाती है।

बंगाल में 'जात्रा' नामक नृत्य-रूपक भी बहुत अरसे से चला आ रहा है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने बचपन की घटनाओं में इन मण्डलियों का और उस समय का बड़ा अच्छा वर्णन किया है।

जात्रा का अभिनय घुमक्कड़ दल करते हैं। इनमें नाचने-गाने वाले सभी लोग होते हैं। कश्मीर का 'बचनगमा' नृत्य भी इसी तरह के दलों द्वारा किया जाता है। जिस तरह बचनगमा दल पेशेवर बन चुके हैं और किसी भी मेले-ठेले में जा पहुँचते हैं, इसी तरह जात्रा वाले भी इस कार्य को अपनी आजीविका ही बना चुके हैं।

जात्रा का मुख्य विषय कृष्ण-लीला होता है परन्तु कथकली की तरह इनमें सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों को भी स्थान दिया जाता है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दिनों में जात्रा पार्टियाँ ऐसे नृत्य-रूपकों का भी अभिनय करती थीं, जो राष्ट्रीय भावनाओं से भी ओतप्रोत होते थे।

जात्रा का कोई-न-कोई रूप अन्य प्रदेशों में भी मिलता है। अन्य प्रदेशों की रासलीला बहुत कुछ इसी तरह की होती है। बंगाल में भी जात्रा का विषय कभी-कभी राम चरित्र भी रहता है, परन्तु चैतन्य के प्रभाव से कृष्ण-लीला ही इनका मुख्य विषय है।

जात्रा के गायकों के साथ-साथ ढोल बजता है। आजकल तो वायलिन, बाँसुरी और हारमोनियम भी जुड़ गए हैं। गायक एक लम्बा चोगा सा पहनते हैं।

यहीं मैमनसिंह के लोग नकली चेहरे लगाकर बूढ़ा-बूढ़ी नामक एक और नृत्य करते हैं। यह बड़ा मनोरंजक नृत्य होता है। जो नकली चेहरा बनाया जाता है उस पर खूब झुर्रियाँ पड़ी रहती हैं—जो बुढ़ापे की निशानी हैं परन्तु यह नृत्य बुढ़ापे में भी वैवाहिक जीवन के संतुलन को दिखाता है। मनोरंजन का पुट इस नृत्य को और भी अधिक आकर्षक बना देता है।

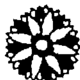
इन्हीं नकली चेहरे वाले नृत्यों में राधा-कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित और भी अनेक नृत्य होते हैं। शिव-पार्वती तथा शिव और शक्ति से सम्बन्धित भी अनेक नृत्य प्रचलित हैं। इस माला में एक 'गंगा-नृत्य' भी है जिसमें गंगा के अनेक रूप दिखाने का यत्न किया जाता है।

बंगाल के पश्चिमी भागों—बर्दवान, बीरभूम और मुर्शिदाबाद आदि में आज भी कुछ ऐसे नृत्य हैं जिनमें युद्ध का अभिनय होता है। इन स्थानों के बावरी और डोम आदि यह नृत्य करते हैं। यह लोग अपने दाएँ पाँव में घुंघरू बाँध कर नाचते हैं। पहले बड़े ज़ोर से चीखते चिल्लाते हैं मानो लड़ने लगे हों। उसके बाद जैसे-जैसे नृत्य में गति आती है, वे धनुष से तीर छोड़ने और भाला

आदि घुसेड़ने का अभिनय करते हैं। इस नृत्य के साथ ढोल बजता है और केवल आदमी ही नाचते हैं। इसे 'रैबेशे' नृत्य कहते हैं।

पश्चिमी बंगाल का 'गंभन' नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध। यह नृत्य बंगला वर्ष के अन्त में 'चड़क' नामक त्योहार पर किया जाता है जो प्राय: अप्रैल मास में होता है। इस नृत्य में केवल पुरुष ही भाग लेते हैं। यह मर्दाना नृत्य कहा जा सकता है। नृत्यकार रंग बिरंगे कपड़े पहन लेते हैं और उनके हाथों में धुनुचियाँ (धूपदान) होती हैं। नृत्य के साथ सजे हुए मृदंग, मजीर तथा काँसे अथवा पीतल की थाली आदि लकड़ी से बजाए जाते हैं।

बंगाल के और कुछ भागों में ढाली और काठी नाम के युद्ध-नृत्य प्रचलित रहे हैं। इनमें भी ढोल और घण्टा बजाया जाता है। ढाली नृत्य में नर्तक लकड़ी की तलवार और ढाल लेकर मैदान में आते हैं और अपनी कला दिखाते हैं।





6

विहार

हम प्रदेशों की सीमाएँ अनेक राजनीतिक अथवा भौगोलिक दृष्टि से नियत कर सकते हैं, परन्तु लोक-कलाएँ इन सीमाओं को नहीं मानतीं। इसका स्पष्ट उदाहरण बिहार है। एक ओर वह उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों से प्रभावित दीखता है तो दूसरी ओर बंगाल और उड़ीसा से भी प्रभावित है।

बिहार में कुछ नृत्य पौराणिक इतिहास पर भी आधारित हैं। किरातार्जुन-युद्ध की कथा तथा इसी तरह की कुछ और कथाएँ नृत्यों में प्रस्तुत की जाती हैं। हमारे देहात में आज भी हमारा प्राचीन इतिहास इसी तरह लोगों की जबान पर है।

जब पाण्डव बनवास में थे तो अर्जुन हिमालय में अपने पिता इन्द्र से अच्छे अस्त्र-शस्त्र लेने आता है। इन्द्र भी रूप बदलकर एक शिकारी का रूप धारण करके अपने बेटे को देखने आते हैं क्योंकि वे अर्जुन से बहुत प्यार करते थे। इतनी देर में एक सूअर निकला, जिस पर अर्जुन और शिकारी ने बाण चलाया।

इस पर झगड़ा हुआ और इन्द्र ने विशाल रूप धारण कर लिया जिस पर अर्जुन के बाणों का कुछ भी असर न हुआ। आखिर भेद खुला और इन्द्र ने अर्जुन को मनचाहे अस्त्र-शस्त्र दिए।

बिहार में आदिवासी लोग बहुत हैं। सथाल लोगों के कच्चे



बिहार का 'किरातार्जुनीय' नर्तक दल

झोंपड़े इतने साफ-सुथरे हैं और उनपर का लोकचित्रण शायद ही और कहीं देखने को मिले। इसी तरह लोक-कला भी इनके पास जीवित है। यह लोग छोटा नागपुर, बिहार के पहाड़ी इलाकों में रहते हैं। बंगाल और उड़ीसा के पूर्वी सीमान्त में फैले हुए हैं।

संथालों के बिलकुल ग्रामीण नृत्य हैं और बहुत ही सुन्दर कला के नमूने हैं। जिस तरह सौराष्ट्र की मजदूर स्त्री सड़क कूटने के साथ-साथ टिपनी लेकर नृत्य भी कर लेती है—अथवा अपने श्रम का अभिनय करती है उसी तरह संथाल मजदूर भी नील के खेतों में किए जाने वाले श्रम का अभिनय करके अपना मन बहला लेता है। उसके नृत्यों में फसल काटने और शिकार की तैयारी का अभिनय होता है।

इनके कुछ नृत्य हल्के फुल्के और मजाकिया भी होते हैं—जिनका आधार घरेलू झगड़े आदि होता है। एक आदमी की दो पत्नियों के झगड़े वाला नृत्य तो बहुत ही मजेदार होता है।

आज चाँद का पूरा गोल मुखड़ा दिखाई दे रहा है। आज संथालों के गाँव में खूब उल्लास है। लो, वह ढोल की आवाज आई। एक आदमी ने भारी-से ढोल पर थाप मारी। वह लड़कियों को नृत्य के लिए निमन्त्रण दे रहा है। लड़कियाँ भागी आ रही हैं। गर्मियों अथवा वसन्त के दिनों में तो उन्होंने अपने शरीर फूलों से सजाए हुए हैं और यदि सर्दियाँ हैं तो उनके शरीर पर पंखों की बहार है। आदमी गाते और ढोल बजाते हैं—तो लड़कियाँ एक लम्बी कतार में खड़ी होकर दो-दो के जोड़े में हाथ में हाथ डाल लेती हैं और नाच आरम्भ होता है। वे आगे को बढ़ती और पीछे को हटती हैं। सिर मटकाना, आगे बढ़ना और पीछे हटना उस ढोल की थाप के अनुसार होता है।

बिहारी आदिवासियों और ग्रामीणों में विवाह पर खूब नृत्य होते हैं। विवाह के लिए जब बरात चली जाती है तो पीछे औरतें खूब हुड़दंग मचाती हैं। वे अनेक तरह के स्वांग नृत्य करती हैं। इनमें बहू का स्वागत, ननद भौजाइयों से झगड़ा, सास-

ससुर के सामने लज्जा से लेकर बहू द्वारा बच्चा जनने तक का स्वांग कर डालती हैं। इन्हें 'जलुमा' नृत्य कहते हैं। यह ठेठ देहाती होते हैं—वैसे प्रायः सभी कगरों में भी विवाह के अवसर पर ऐसे अनेक स्वांग किए जाते हैं।

अहीर लोग भी नाच-गान के बहुत प्रेमी होते हैं। अहीर लोग जब ब्याह के लिए बरात में चलते हैं तो ढोल वाला और बाँसुरी वाले तो साथ में होते ही हैं। किसी और दूसरे बाजे की इन्हें कोई जरूरत ही नहीं रहती। अपने घर से लेकर कन्या पक्ष वालों के घर तक यह नाचते-गाते ही जाएंगे, और अगर वहीं लड़कियों की टोली मिल गई तो ये लोग उन्हें चुनौती दे देंगे। बस, अब तो उन्हें विवाह के मुहूर्त का भी ध्यान नहीं रहेगा। नृत्य के साथ यह बिरहा गाते हैं।

'करमा' बिहार का एक प्रसिद्ध नृत्य है। यह बरसात के दिनों का है और इसमें कुछ उदासी का सा वातावरण रहता है। क्योंकि इसमें नर्तकों की क्रियाएँ धीमी और उत्साहवर्धक नहीं होतीं।

एक गोल घेरे में लड़कियाँ खड़ी होती हैं। उनका शरीर झुका रहता है। लड़कों का दल उन्हें घेरे रहता है। लड़कियाँ एक दूसरे के पीछे पक्षी की तरह उछलती हैं—आधा कदम आगे बढ़ाती हैं और दूसरे से पीछे उसी स्थान पर आ जाती हैं। लड़के गाते हुए और तालियाँ बजाते हुए उनकी ओर कूदते हैं पर फिर पीछे लौट जाते हैं। इसी नृत्य से मिलता-जुलता एक नृत्य 'करमा खादुरा' है जो बसन्त का नृत्य है। इनके ढोल की आवाज में समुद्र की लहरों के गर्जन का स्वर प्रतिध्वनित होता है।

उत्तर प्रदेश में होली की धूम की तरह बिहार में भी खूब धूम

रहती है। इन दिनों के नृत्यों को 'गीडा' नृत्य कहते हैं। होली पर लड़कों के झुण्ड के झुण्ड घूमते हैं। ऐसा प्राय अनेक प्रदेशों में होता है। यह लोग एक-दो लड़कों को लड़की के कपड़े पहना देते हैं और फिर हुल्लड़ मचाते हुए चलते हैं। इस टोली का एक नायक होता है जिसे जोगीराज कहते हैं। जोगी से ही पोगीड़ा बना। जोगी पहले एक पद गाता है, उसके बाद सारी मण्डली उसे दोहराती है—तब लड़की बना हुआ लड़का खूब नाचता है।

सरायकेला के 'छाऊ' नृत्यों का अद्वितीय महत्त्व है। सरायकेला के राजा साहब स्वय इस नृत्य के उन्नायक हैं। उनके कथनानुसार यह उनका परम्परागत नृत्य है। सरायकेला के राजकुमार स्वय भी सुन्दर नृत्य करते हैं। इस नृत्य में चेहरे को मुखौटे से ढक लिया जाता है। मुखौटे बहुत कलात्मक ढग के सुन्दर बनते हैं। मेघदूत, उपापरिणय आदि इन नृत्यों के श्रेष्ठ कथानक हैं। शहनाई, अलगोजा, मांदल, मृदग आदि इनके श्रेष्ठ वाद्य हैं। छाऊ नृत्य का कार्यक्रम नियमित रूप से प्रत्येक वर्ष चैत्र मास में राजभवन के विशाल प्रागण में आयोजित होता है।

छोटा नागपुर में कई स्थानों पर 'हो' लोग रहते हैं। ये मध्यप्रदेश के मुण्डा लोगों के समान ही होते हैं। ये खेती का काम करते हैं और प्रकृति तथा स्वतन्त्रता प्रेमी होते हैं। उनका सुख-दुख सब उनके नृत्यों में और गीतों में साफ झलकता है। और इसी बात से उनके त्योहारों में प्रसन्नता आती है।

ये लोग 'दासोली' नामक देवी के उपासक होते हैं। वे मानते हैं कि यह देवी साल के पेड़ों पर रहती है। यह उनकी जान, माल और फसलों की रक्षा करती है। इसी देवी की पूजा के लिए उसे

प्रसन्न करने के लिए यह लोग जो नृत्य करते हैं उसे 'माघी' कहते हैं। ये नार्गीरा, ड्रुम्बोरा आदि देवताओं की पूजा में भी नृत्य



बिहार के 'हेरो' नृत्य के नर्तक विशिष्ट मुद्रा में

करते हैं—क्योंकि इन्हीं की कृपा से वे शिकार में सफल होंगे और उनकी जान पर कोई खतरा नहु आ सकेगा और पानी की कोई कमी न रहेगी।

बसन्त के दिनों ये लोग 'बा' उत्सव मनाते हैं और अपने घरों को ताजा फूलों आदि से खूब सजाते हैं। तीन-चार दिन खूब नाचते-गाते हैं। फसल बोने के समय 'हेरो' त्योहार मनाया जाता

है। उन दिनों 'चासोली' से यह मनौती मनाते हैं कि खूब अच्छी फसल हो और यह जल्दी पक भी जाए ताकि किसी बात का खतरा न हो। और जब फसलों की कटाई समाप्त हो जाती है तो 'जोम नामा' पर्व आता है और वे फसल काटने की खुशी में भी खूब नाचते हैं।

'चौं' बिहार में भी प्रसिद्ध है और उनकी अनेक शाखाएँ हैं। उसका पौराणिक रूप भी है और उसका सामरिक रूप भी है। किरातार्जुन युद्ध-नृत्य 'चौ माला' का ही एक नृत्य है।



7

उड़ीसा



उड़ीसा छोटा-सा प्रदेश है परन्तु यहाँ अनेक जन-जातियाँ रहती हैं, इसीलिए लोक नृत्यों के विचार से बहुत समृद्ध है। जिस प्रकार मलाबार में अद्भुत कथकली का विकास हुआ, असम ने देश को मणिपुरी जैसा सुन्दर नृत्य दिया, उसी प्रकार उड़ीसा ने भी देश को बहुत ही अनुपम नृत्य दिया—और वह है 'छो' नृत्य।

सुप्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर ने इसी नृत्य को देखकर एक बार कहा था—'बहुत ही थोड़े लोग समझते हैं कि कला जीवन में क्या महत्त्वपूर्ण भाग पूर्ण करती है—और कई लोग उसकी उपेक्षा करके जीवन की रसधारा को ही समाप्त कर देते हैं।'

'छो' नृत्य चैत्र के वसन्त के दिनों में प्रारम्भ होते हैं। इस नृत्य को विकास और प्रसार विशेष रूप से सरायकेला रियासत में मिला। नृत्योत्सव प्रारम्भ होने से पहले शिव मन्दिर में तीन दिन धार्मिक ढंग से पूजा होती है। इस पूजा के प्रारम्भ का

दिन महाराजा का पण्डित निश्चित करता है। इस पूजा का मतलब यह होता है कि राजा और प्रजा दोनों खुशहाल हों। तेरह यम पूजा करते हैं—इनमें ब्राह्मण से लेकर छोटी-से-छोटी जाति तक के व्यक्ति होते हैं। यह तेरह भक्त उस जलूस के अगुआ होते हैं जो नदी तट पर स्थित शिव मन्दिर को जाता है। यह लोग एक घड़ा अपने साथ लाते हैं और उस नदी के पवित्र जल से भर लेते हैं। उसे वापिस लाकर फिर शहर के मन्दर के उसी शिव मन्दिर में रख देते हैं। उसके बाद उस मन्दिर से एक पानी का घड़ा नदी पर लाया जाता है। इसे लड़की के कपड़े पहने हुए एक लड़का उठाता है। नदी के किनारे एक घड़ा गड़ा हुआ होता है। वह घड़ा साल भर से—अर्थात् पिछले वर्ष की पूजा के समय गाड़ा गया था। यदि घड़े का पानी कुछ कम हो गया अथवा कुछ खराब हो गया तो आने वाला वर्ष अशुभ माना जाता है, और यदि पानी ठीक है तो वर्ष अच्छा समझा जाता है।

इस घट को 'जाजाघट' कहा जाता है और इसका पानी उसके बाद होने वाली पूजा विधियों में प्रयुक्त होता है। और जो घड़ा मन्दिर में भर कर लाया गया था उसे उसी स्थान पर गाड़ दिया जाता है, जहाँ से पहले वर्ष का दबा हुआ घड़ा निकाला गया था। इस तरह तीन रात की पूजा के बाद नृत्य समारोह आरम्भ होता है।

'छौ' शब्द का अर्थ है नकली चेहरा या नकाब। उड़ीसा के नर्तक आज भी वर्षों से चली आती परम्परा को निभाते आ रहे हैं। परन्तु यह केवल सरायकेला रियासत के नर्तकों तक ही सीमित है—बाकी मयूरभञ्ज तथा दूसरे स्थानों के लोगों मे नकली

चेहरों से छुट्टी पा ली है। सरायकेला आदि स्थानों पर इस नृत्य का अपनी पुरानी परम्परा कायम रखना वहाँ के महाराजा के कारण ही सम्भव हो सका। महाराजा केवल नृत्य के संरक्षक ही नहीं बल्कि वे स्वयं इसमें भाग भी लेते हैं।

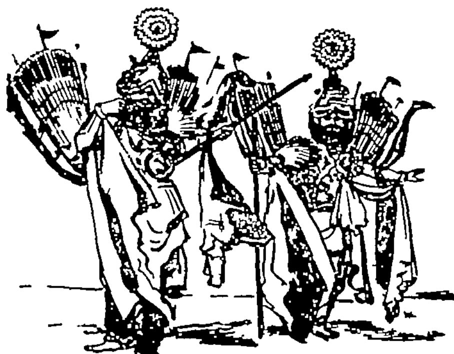
यह लोग शिव के भक्त हैं और शिव पूजा का वार्षिक पर्व भी इन्हीं दिनों आता है। तब महाराजा भी नृत्य में भाग लेते हैं। हाँ, 'चो' नृत्य में औरतें कभी हिस्सा नहीं लेतीं परन्तु औरतों की जगह लड़के वैसा वेश बनाकर नाचते गाते हैं।

यह नृत्य अब उड़ीसा की उसी तरह एक परम्परा बन गया है जिस तरह मणिपुरी आदि नृत्य। इस नृत्य को सीखने वालों का प्रशिक्षण ५ ६ वर्ष की छोटी-सी आयु में ही हो जाता है। और नृत्य से सम्बन्धित कथाओं के हाव भाव के प्रदर्शन भी सिखाए जाते हैं।

नव वर्ष के आरम्भ में जिन दिनों यह नृत्य चलता है, दूर-दूर के वन प्रदेशों से लोग आते हैं और मस्ती में सब कुछ भूल जाते हैं।

रात चढ़ रही है और दर्शक लोक भारी संख्या में इकट्ठे हो गए हैं। नृत्य के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया है। अंधकार को दूर करने के लिए बड़े-बड़े लैम्प, लालटेनें और मशालें जल उठती हैं। ढोलों की जोरदार थाप में जनता का शोर दब गया। पहाड़ियाँ और वन-प्रदेश उससे गूँज उठे और उसके बाद गाना आरम्भ हो गया। नर्तक मैदान में आ गए। उन्होंने अपने मुँह पर वही नकली चेहरे लगा रखे हैं जिन कथाओं का उन्हें प्रदर्शन करना है। नकली चेहरे लकड़ी अथवा पेपर-मैशी के बने हैं। यह ठीक है कि नर्तक ने चेहरा लगा रखा है परन्तु सभी हाव-

भाव अपने अंगों और क्रियाओं से ही प्रकट करते हैं। गाना और ढोल साथ बजता है पर नर्तक उनसे प्रेरणा नहीं लेता परन्तु यह गाना और ढोलक नर्तक के भावों को स्पष्ट करने में सहायक ही होते हैं—प्रमुख नर्तक हैं न कि ढोल और गाना।



उड़ीसा के नाचाओं के नृत्य की वेशभूषा एवम् उसकी नृत्य पद्धति अपनी विशिष्टता रखती है।

नर्तकों की पोशाक रंग-बिरंगी और कथानक के अनुकूल ही होती है। पोशाक के रंग नर्तक के मनोभावों को प्रकट करने में सहायक होते हैं। कपड़े जरी, गोटे आदि लगे हुए सिल्क के होते हैं। वे किसी भी तरह आँखों को चुभते नहीं और न प्रभावहीन ही होते हैं।

इस नृत्य में एक नर्तक भी भाग लेता है। दो व्यक्ति भी हिस्सा लेते हैं और कुछ मिल कर भी नाचते हैं। अकेला नर्तक ताण्डव नृत्य में शिव के उन भावों का प्रदर्शन करता है जब सती की मृत्यु पर वे देवी दुःख प्रकट करते हैं। 'मयूर' नृत्य में आकाश में बादलों के घिर आने तथा बरसात की फुहार पड़ने पर मयूर की सी प्रसन्नता नर्तक के अग अग से फूटी पड़ती है। मोर की यह प्रसन्नता स्वाभाविक होती है क्योंकि भयकर गरमी के बाद काले घने बादलों को देखकर और ठण्डे पवन का स्पर्श पाकर मयूर नाच उठता है। नर्तक 'धीवर' नृत्य में मछुए का प्रदर्शन करता है और 'कुरङ्ग' नृत्य में वह बरसात के तूफान में डरी हुई छोटी हरिणी का अभिनय करता है। 'कुरङ्ग' सस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है हरिण। 'सावरा' अथवा शिकारी नृत्य भी अकेला नर्तक ही करता है। इसमें पहले शिकारी अपने शिकार को देख कर जिस प्रकार प्रसन्न होता है नर्तक भी वही भाव भगिमा प्रकट करता है, परन्तु शीघ्र ही उसका शिकार उसकी आँखों से ओझल हो जाता है और साथ ही जगल की भयकरताएँ साक्षात् रूप धारण करके सामने आती हैं तो जो भाव उसके चेहरे पर आते हैं और अन्त में जब सब खतरों से निकल कर शिकारी अपने शिकार को पा जाता है तो उसकी प्रसन्नता अकथनीय होती है। ऐसा मालूम देता है कि नर्तक उस समय सब कुछ भूल जाता है और पूरी तरह मस्त हो जाता है। 'सावरा' सचमुच अपनी बराबरी नहीं रखता।

शिव-पार्वती की अर्चना का एक 'चड़ैया' नामक नृत्य उड़ीसा में अत्यधिक प्रसिद्ध है। 'चड़ैया' का उड़िया में अर्थ बहेलिया है। एक 'चड़ैया' शिकार करते हुए सर्पदश के कारण

मर जाता है। 'चड़ैया' की पत्नी शिव पार्वती की अर्चना करके उन्हें प्रसन्न करती है। चड़ैया को जीवन दान मिलता है। जीवन दान प्राप्त होने पर उल्लासपूरित नृत्य होता है। नृत्य में दो पात्रों के अतिरिक्त अन्य लोग भी नृत्य करते हैं। नृत्यकार पशु-पक्षी की नकल करते हैं। 'चड़ैया' में जो पाश अथवा फन्दा दिखाया जाता है, वह प्रेम की अमर ग्रन्थि का प्रतीक माना जाता है। नृत्य के साथ-साथ ढोल तथा महुरी पर गीत भी गाये जाते हैं।

इसी तरह के एक-दो एकाकी नृत्यों में नारी चरित्र का और भी दिग्दर्शन होता है। उनमें एक है 'आरती' नृत्य। 'आरती' में यह दिखाया जाता है कि किस प्रकार एक पुजारिन मूर्ति की धूपदीप से पूजा करती है। इसी प्रकार दूसरा नृत्य है 'दुर्गा', जिसमें नर्तिका दुर्गा द्वारा महिषासुर के मर्दन का प्रदर्शन प्रस्तुत करती है। इसमें उसके द्वारा विभिन्न प्रकार के शस्त्रों को चलाने की निपुणता का प्रदर्शन होता है—जिसमें ढाल तलवार, फरसा, भाला तथा धनुष बाण सभी तरह के हथियार होते हैं।

दो आदमियों की जोड़ी वाले भी अनेक नृत्य हैं। 'चौ' का 'अस्त्र द्वन्द्व' तलवार के युद्ध का प्रदर्शन करता है। 'चन्द्रभागा' नृत्य पौराणिक कथा पर आधारित नृत्य है और इसमें चन्द्रभागा के प्रति सूर्य के प्रेम का प्रदर्शन होता है और अन्त में चन्द्रभागा समुद्र में डूब कर आत्महत्या कर लेती है। 'वासुकी-गरुड़' भी पौराणिक नृत्य है। यह सभी जानते हैं कि वासुकी को रूपावतार माना जाता है और गरुड़ विष्णु का वाहन है। इस नृत्य में गरुड़ और वासुकी का युद्ध होता है जिसमें गरुड़ विजयी होता है।

राधाकृष्ण हमारी पौराणिक गाथाओं में बड़ा महत्त्व रखते

हैं। उनका प्रेम एक दैवी और अमर हो चुका है। हमारे ग्रामों, वहाँ के लोक नृत्यों, वहाँ के लोक गीतों और वहाँ की लोक कथाओं पर तो उनका ऐसा प्रभाव है जिससे हम मुक्त नहीं हो सकते। 'चौ' भला उनके प्रभाव से कैसे बच सकता था।

मयूरगंज के लोगों ने 'चौ' को काफी सरल बना दिया है। वहाँ नकली मेहरों का उपयोग तो समाप्त ही हो गया है। वहाँ विशेषकर रूप से यह युद्ध नृत्य रह गए हैं, वे भी उड़िया क्षत्रियों के हमारे पौराणिक और रामायण तथा महाभारत आदि पर आधारित अनेक नृत्य हैं। बिहार के लोगों की तरह इनका 'किरातार्जुन' नृत्य भी काफी प्रसिद्ध है—जिसमें किरातभेष के रूप में शिवजी और अर्जुन का युद्ध अभिनीत होता है। 'गरुड़-वाहन' नृत्य भी पौराणिक गाथा से ही बना एक नृत्य है।

'मायाशबरी' एक सामूहिक नृत्य है। समुद्र मथन के समय जिसे सतयुग में हुआ कहा जाता है, विष्णु ने मोहिनी का रूप धर कर महादेव को मोहित करने का यत्न किया। इससे पार्वती को क्रोध आया परन्तु उसने द्वापर तक धैर्य रखा और शबरी का रूप धारण करके अपनी कुछ सखियों के साथ कृष्ण को मोहित करने का यत्न किया। कृष्ण भगवान् मोहित हो गए और उसके पीछे कैलाश चल दिए। महादेव ने जब यह हाल देखा तो अपना त्रिशूल ले कृष्ण का अन्त करना ही चाहते थे कि पार्वती ने बीच में पड़कर उन्हें रोका क्योंकि अब उसे यह स्पष्ट हो चुका था कि महादेव किसी और पर मुग्ध नहीं हैं। कृष्ण अपने कृत्य पर लज्जित हुए और उन्होंने जीवन-दान माँगा।

यह ठीक है कि हमारे अनेक नृत्य ऋतुओं के अनुसार ग्रामीण जीवन में एक नया उल्लास और उत्साह भरते हैं परन्तु

अनेकानेक नृत्य केवल उपज अथवा खेतों से ही सम्बन्धित हैं, जिनमें किसान या नर्तक के रूप में किसान यह माँग करता है कि फसल खूब ऊँची हो, खूब हरी-भरी हो और अनाज से लदी हुई हो।

उड़ीसा के भूमिया लोग भादों महीने की एकादशी के दिन 'कर्म' नृत्य करते हैं। वे वास्तव में शिव की उपासना करते और उन्हें प्रसन्न करने का यत्न करते हैं ताकि फसलें खूब अच्छी हों, उनकी आयु खूब लम्बी हो। उस दिन जगल से एक पेड़ लाकर गाँव में लगाया जाता है और एक मिट्टी का घड़ा उसके नीचे रखा जाता है और उसमें धान तथा दूसरे अनाज के दाने डाले जाते हैं। उन्हीं को सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है। जो लोग इस क्रिया में भाग लेते हैं वे उस दिन व्रत रखते हैं और सारी रात नाचते हैं।

इसी तरह इनका एक 'धामर' नृत्य है, जिसमें भूमि की पक्षा करते हैं ताकि उसमें अच्छी फसलें हों। इन भूमिया लोगों का एक 'आवुर' नृत्य भी है। इसमें वे चावलों से बनाई हुई खास तरह की शराब पीते हैं और उसे भूमि पर गिराते भी हैं। वह जिधर को बहे समझते हैं कि उधर की ओर की भूमि फसल के लिए अच्छी रहेगी। इस नृत्य द्वारा वे अपने देवता 'बुरुयोंगा' को मनाते हैं।

इन नृत्यों के साथ कर्म गीत गाए जाते हैं। इन नृत्यों में एक बात विशेष रूप से यह देखने की है कि केवल एक काम को छोड़ कर आदमी और औरतें खेती के काम भी पृथक-पृथक् करते हैं—उसी तरह इन सब नृत्यों के भी दल अलग-अलग ही नाचते हैं। परन्तु हाँ, जिस तरह फसल काटने का काम दोनों मिलकर करते

हैं, साथ-साथ करते हैं, कन्धे से कन्धा मिला कर करते हैं—इसी तरह खेती और पकी हुई फसलों को नष्ट करने वाले कीड़ों को नष्ट करने में सदा इकट्ठे रहते हैं—इसी भावना को प्रदर्शित करने वाला एक नृत्य भी होता है।

पौराणिक, युद्ध, फसलों की रक्षा आदि से सम्बन्धित नृत्यों के अतिरिक्त भारत के दूसरे किसानों की तरह उड़ीसा के लोगों के भी अनेक ग्रामीण-नृत्य हैं जिनमें उनकी दैनिक जीवन की क्रियाएँ उनके रीति रिवाज, उनकी मेहनत-मशक्कत की झलक होती है।





8

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश काफी विशाल प्रदेश है। यह जहाँ एक ओर दिल्ली और पंजाब से मिलता और उनसे प्रभावित दीखता है वहाँ इसके पूर्वी प्रदेश बिहार से प्रभावित अथवा उसे प्रभावित करते स्पष्ट दीखते हैं। इसी तरह इसके पहाड़ी प्रदेशों की अपनी ही निराली शान है। भारत भूमि का वह सौभाग्यशाली प्रदेश यही है जहाँ गंगा अनोखी शान से बहती है। भारत के चार शास्त्रीय नृत्यों में से कत्थक उत्तर प्रदेश की उपज है।

कुछ लोगों का विचार है कि उत्तर प्रदेश में लोक-नृत्यों की वह पुरानी बहार नहीं रही। परन्तु उत्तर प्रदेश के यमुना जी वाले क्षेत्र आज भी लोक-नृत्यों के अनुपम भण्डार हैं। यही ब्रज भूमि श्रीकृष्ण महाराज की लीला-भूमि रही। यह सारा ब्रज का इलाका रास-नृत्यों के अनेक रूपों से ओत प्रोत है।

ब्रज की होली भी बड़ी प्रसिद्ध है। होली नृत्य प्रायः औरतें ही करती हैं। होली यों तो भारत भर में किसी न किसी रूप

में प्रसिद्ध है और इसका मुख्य भाग रंगदार पानी अथवा गुलाल है परन्तु देश के अनेक नृत्य विशेष रूप से होली से सम्बन्धित हैं। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब और मध्य प्रदेश के लोग तो



उत्तर प्रदेश का गरबा नृत्य, गुजरात तथा मध्यप्रदेश के गरबा नृत्य की भाँति ही प्रसिद्ध है।

इन दिनों खूब झूम कर मौज मनाते हैं। यह नृत्य एक प्रकार से क्रीड़ा-नृत्य बन गया है। ब्रज के कई स्थानों पर यह क्रीड़ा-नृत्य बहुत ही प्रसिद्ध है—जहाँ औरतें डण्डों से आदमियों की खूब मरम्मत करती हैं।

नौटंकी लोक-नाट्य का नाम तो उत्तर प्रदेश में बहुत ही प्रसिद्ध है। नौटंकी जन-साधारण के मनोरंजन का बड़ा साधन है। वैसे नौटंकी बंगाल के यात्रा दलों की तरह कुछ पेशेवर लोग,

का काम है परन्तु जनसाधारण का इससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। नौटकी में कुछ नाचने वाले होते हैं, कभी-कभी तो एक ही पुरुष स्त्री वेश में नाचता है और कभी कथानक के अनुसार एक से अधिक नर्तक भी होते हैं। नौटकी द्वारा सामाजिक समस्याएं तो सामने आती ही हैं, साथ ही राष्ट्रीय भावनाओं के प्रसार में भी नौटकी का योग है।

उत्तर प्रदेश में पुरुषों एवम् महिलाओं के संयुक्त नृत्य कम ही हैं। जौनसार बावर का 'सैना' नृत्य इस श्रेणी में प्रमुख है। यह नृत्य दीपावली के अवसर पर किया जाता है। इसमें उत्सवों एवम् त्यौहारों पर सम्बन्धियो से पुनर्मिलन होने की भावना व्यक्त की जाती है। एक अन्य भावना जिसकी इस नृत्य में अभिव्यक्ति होती है, वह है विवाहिता युवतियों के अपने मायके जाने पर उनके प्रेमियों का वियोग। इसमें स्त्री-पुरुष अत्यन्त ही चटकीले और भड़कीले वस्त्राभूषण धारण करते हैं।

सावन की घटा हमारे सभी ग्रामीणों को नया संदेश देती है। उस समय अपने नृत्य-समारोह द्वारा उसका सौंदय और भी बढ़ा देते हैं। उत्तर प्रदेश में कजरी का काफी प्रचलन है। उधर पेड़ों पर झूला पड़ जाता है और झुण्ड के झुण्ड कजरी गाते हैं।

उत्तर प्रदेश में अहीर, चमार, कहार जातियों के अपने अलग और बड़े प्रसिद्ध नृत्य हैं। अहीर तो यहाँ तक कहते हैं कि श्रीकृष्ण तो हम ही में से पैदा हुए। इसी तरह इनके नृत्य भी एक विशेषता रखते हैं। यह अपने नृत्यों में समाज की कुरीतियों, कृष्ण भगवान् को किसी घटना अथवा अन्य दैनिक समस्याओं से सम्बन्धित भावनाओं का ही प्रदर्शन नृत्यों में करते हैं। अपने नृत्यों के साथ ये ढालक और करताल बजाते हैं। नतक केवल एक

आंगिया पहनते और बाकी शरीर के अनेक स्थानों पर घुंघरू बांध लेते हैं। इनके एक मजेदार बिरहा की बानगी देखिए—

मंहगी के मारे बिरहा बिसरिगा
भूल गई कजरी कबीर।
देखि के गोरिया का उभरा जोबनवा
उठे ना करेजवा मां पीर।

इसी तरह कहारों के कहरवा और चमारों के भी नृत्य हैं।

'झोरा' उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाके कुमाऊं का सामूहिक नृत्य है। और मजे की बात यह है कि यह वास्तव में समूची जनता का नृत्य है। इसमें छोटे-बड़े का भेद तो होता ही नहीं, क्योंकि चाहे जितने स्त्री और पुरुष भाग ले सकते हैं। जिस तरह हिमालय की चोटियां एक दूसरे के बाद चलती जाती हैं और यह सिलसिला बड़ी दूर तक फैला हुआ है और उसमें एक अनोखा उतार चढ़ाव है उसी तरह यह नृत्य भी उस उतार-चढ़ाव का पूरा प्रतिबिम्ब है। अनेक नर्तक उसकी विशालता के द्योतक हैं। यह एक दूसरे के हाथ में हाथ डाले कभी बैठते हैं, कभी उठते हैं, कभी झुकते हैं—क्या यह हिमालय की चोटियों का स्वरूप नहीं?

टिहरी गढ़वाल भी कुमाऊं की तरह उत्तर प्रदेश का ही हिस्सा है—पर भाषा, भाव और रहन-सहन में काफी अन्तर है।

टिहरी गढ़वाल के लोगों का कहना है कि वे पांडवों से प्रभावित हुए हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इनके इस कथन में सत्यता है। क्योंकि पांडवों ने वनवास के समय अपना बहुत सा समय इस देश में और आसपास के इलाकों में बिताया। पांडवों के इस प्रभाव को यहां पहाड़ी पांडव-लोक-नृत्य और भी पुष्ट करता है।

यहाँ के लोक नृत्यों में 'पांडव-नृत्य' बहुत प्रसिद्ध है। यह प्राय: उन दिनों का नृत्य है जब यहाँ का किसान अपने खेती आदि के काम से निवृत्त हो जाता है। यह नृत्य दिसम्बर और जनवरी के महीनो में होता है। इन्हीं दिनों इस प्रदेश में विवाह आदि प्रसन्नता के अवसर भी बहुत आते हैं।

'पांडव-नृत्य' में बहुत से पुरुष मिलकर नाचते हैं। इनमें स्त्रियाँ सम्मलित नहीं होतीं। इस नृत्य के समय लोग एक घेरा बना लेते हैं और नाचते-गाते हैं। वैसे इस प्रकार मिलकर नाचने से पहले वे पांडवों के स्वाँग बना कर नाचते हैं और महाभारत तथा पांडवों की कथाओं के गीत गाते हैं।

टिहरी गढ़वाल में पांडव नृत्य के बाद दूसरा प्रसिद्ध नृत्य 'चड़िया' नृत्य है। चड़िया का अर्थ यहाँ की भाषा में चौक या मैदान है—जैसे गाँव की चौपाल। इस नृत्य का नाम नृत्य के स्थान के ऊपर पड़ता है। प्राय: पहाड़ी लोग गाँव की चौपाल में नाचते हैं। इस नृत्य में प्राय: सभी तरह के गीत गाए जाते हैं। इनमें लड़ाई सामाजिक रीति-रिवाज, कुरीतियों आदि का वर्णन और उपहास भी रहता है परन्तु अधिकांश प्रेमगाथाएँ रहती हैं। 'चड़िया' नृत्य में स्त्री-पुरुष सब मिल कर नाचते हैं।



9

मध्य प्रदेश



मध्य प्रदेश के अनेक स्थानों पर अनेक आदिवासी जातियाँ रहती हैं। भील और भिलाला लोग छः लाख के लगभग हैं। अधिकांश विन्ध्य पर्वतमालाओं में स्थित रतलाम, झाबुआ और सरदारपुर आदि जिलों में फैले हुए हैं। यह लोग मध्य भारत की अन्य आदिवासी जातियों—शरिया, बनेला, कोरकू निहाल और गोंडों से अधिक सभ्य और सुसंस्कृत हैं।

भील और भिलाला लोगों का कोई भी पर्व अथवा त्योहार नाच-गान के बिना शायद ही होता हो। यह लोग अपने त्योहारों को मिल-जुलकर बड़े चाव से मानते हैं। आदमी और औरतें दोनों एक ही उत्साह से नृत्य महोत्सवों में भाग लेते हैं। नाचने वाली कोई पार्टी विशेष नहीं होती। जो भी चाहे नाच में भाग ले सकता है। एक दल थक जाता है अथवा एक नर्तक थक जाता है तब दूसरा उसके स्थान पर आ खड़ा होता है और नृत्य

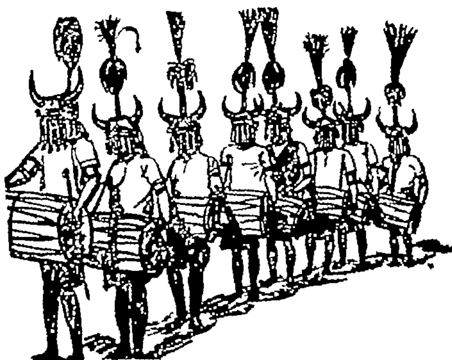
अपनी सुर-ताल के साथ चलता रहता है। यद्यपि हमारे शास्त्रीय संगीत और नृत्य में जिस प्रकार की पदचाप और अग विन्यास का विधान है उसी प्रकार यह लोक-नृत्य नियमों से जकड़े हुए नहीं हैं, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि भीलों के लोक-नृत्य अनियन्त्रित होते हैं। लय-ताल और पदचाप का पूरा ध्यान रखा जाता है। सारी-की-सारी नर्तक मण्डली के पाँव एक ही तरह के उठेंगे, कमर झुकेगी तो एक ओर को, एक ही तरह झुकेगी। वस्तुत उनकी वन्य सुलभ सादगी और सरलता में ही उनके लोक-नृत्यों की मधुरता और मोहिनी निवास करती है। इनके नृत्यों में उनकी असली आत्मा झाँकती है। इनके नृत्यों को देखने से पता चलता है कि इनकी अपनी सस्कृति थी—जो अपना महत्त्व रखती थी।

नृत्य के साथ सगीत

भील औरतें प्राय एक गोल घेरे में नाचती हैं। भील कुमारियाँ एक गोल घेरे में खड़ी हो एक दूसरे का हाथ पकड़े रहती हैं और 'मडल' की ताल पर नाचती हैं। भील महिलाएँ लोक-नृत्य के अवसर पर साथ-साथ गाना पसन्द करती हैं। आवश्यक नहीं कि यह गीत किसी नियम से बँधे हों उनमें छन्द आदि का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता परन्तु उन्हें इस प्रकार से बनाया जाता है कि वे लोक-नृत्य की सुर-ताल में ठीक बैठें। उन गानों को सगीत से अलग नहीं किया जा सकता है। अनेक बार तो ताल और लय को स्थिर रखने के लिए लोक-गीतों में बेकार की पंक्तियाँ रखी जाती हैं और बेकार के शब्दों की भर-मार रहती है।

वस्तुत यह गाने छोटे होते हैं। एक ही पंक्ति को बार-बार

दोहराने से नृत्य में तेजी आती है और नृत्य जब पूरी तेजी पर होता है तब दूसरी पंक्ति का नम्बर आता है। यहाँ नीचे दिए



मध्यप्रदेश के बस्तर जिले के मारिया जाति के आदिवासियों का सींग-नृत्य

गए एक गान से स्थिति स्पष्ट हो जाएगी—

कासो घोड़ो हो,
चार र जिया पाय,
चाँदी डालो देखो हो,
राइया अपनो घोड़ो।
पानी पाई देखो हो
राइया अपना घोड़ो हो।

अमादार को घोड़ो,
ठेकेदार को घोड़ो,
हो ! कालो धोड़ो हो—

मीस और मिलाला लोगों में जो लोक-नृत्य प्रसिद्ध हैं, वे सयाल ढग के ही हैं। पुरुषों के अधिकांश नृत्यों में वीरता की भावना का ही प्रदर्शन किया जाता है। आदमी पैरों में घुंघरू बांधकर हाथों में ढाल-तलवार आदि लेकर नृत्य करते हैं। वे प्राय: एक गोल घेरे में हाथ-पांव नचाते हुए चलते हैं। उस समय वे नकली युद्ध का सा प्रदर्शन करते हैं। वह आक्रमण और प्रत्याक्रमणों का नाटक सा प्रतीत होता है।

पाली-महिलाएँ 'पासी' नृत्य के प्रदर्शन की तैयारी के लिए दो पंक्तियों में खड़ी होती हैं। यह नृत्य बहुत कुछ कश्मीरी 'रोफ' नृत्य जैसा होता है। अपनी नृत्य वेषभूषा में सजी खड़ी महिलाओं की दो पंक्तियाँ अंग सचालन करती हुई आगे की ओर बढ़ती हैं। जब ये दोनों पंक्तियाँ निकट आ जाती हैं, तब वे पीछे को हटती हैं। पीछे को हटते समय वे एक ओर हटती हुई एक गोल सा घेरा बना लेती हैं। इसी प्रक्रिया को बार-बार दोहराया जाता है।

'मौली' नृत्य में अंग संचालन साधारण होता है। यह छ: कदम का नृत्य है। नतकियाँ तीन लम्बे डग—एक छोटा, एक बड़ा (पीछे को) एक छोटा (पीछे को) कदम उठाती हुई नृत्य करती हैं। इसमें नतकी धीरे-धीरे डग भरती हैं और धीमी गति से गीत गाती हैं।

'नवताली' नृत्य में नर्तकियाँ तेजी से पग उठाती हैं। इसमें अन्य नृत्यों की अपेक्षा अंग सचालन तीव्र गति से होता है।

महिलाएँ अपनी सुकुमार देह धनुष की तरह झुकाती हुई गोल घेरे में घसती हैं।

यहाँ पर 'जोड़ी' नृत्य भी लोकप्रिय है। 'जोड़ी' का मतलब है, दो। इस नृत्य में महिलाएँ जोड़े के रूप में नाचती हैं। दो नर्तकियाँ नृत्य प्रदर्शन करती हैं। वे एक दूसरे के आमने-सामने गोल घेरे में नाचती हैं। नाचते समय अंग संचालन आवश्यक है।

चैत का महीना यहाँ की महिलाओं के लिए प्रसन्नता का सन्देश लेकर आता है। पास-पड़ोस की महिलाएँ इकट्ठी हो गीत गाती हुई, वातावरण में मादकता फूँकती हुई नदी या तालाब पर जाती हैं। वहाँ पर पीतल के कलश में जल भरकर, उसपर फूलों के हार और पत्तियाँ सजाई जाती हैं। कई बार एक ही कलश अथवा कई बार अनेक कलश इस प्रकार फूल पत्तियों से सजाए जाते हैं। इसके बाद प्रत्येक स्त्री के माथे पर गुलाल मली जाती है, फिर वे सब नृत्य करती हुई लौटती हैं। वातावरण में गुलाल की लाली बिखरने लगती है और चुनरियों के छोर वायु में फरफराने लगते हैं। पायल की झंकार, ढोल की ढमक के साथ मिलकर अपूर्व संगीत की सृष्टि करती है।

ज्येष्ठ-आषाढ़ में बुवाई के समय भी नृत्य किए जाते हैं किन्तु आजकल इनका प्रचलन नहीं रहा। एक समय था जब बोनी के समय खेत की मेंड़ पर लोग इकट्ठे होते थे और देवी-देवताओं के पूजन के बाद नृत्य होता था। इस नृत्य में कुँवारी कन्याएँ ही अधिकतर भाग लेती थीं किन्तु अब यह नृत्य समाप्त हो चुका है।

इतना कहा जा सकता है कि भील लोगों को नृत्य में ताल और लय का ज्ञान है। महिलाओं के नृत्यों में एक क्रम और अंग संचालन की सीमा है। पुरुषों के नृत्यों में भावना और लय की

प्रधानता है।

भील और भिलाला लोग नृत्य के समय किसी विशेष पोशाक के प्रति बँधे हुए नहीं हैं। वे अपनी इच्छा से अपने शरीर को सजाते हैं। परन्तु हाथों में धनुषबाण रखते हैं और अपने पैरों में घुँघरू बाँधते हैं। औरतें प्राय लाल रंग की चुनरी पहनती हैं जिसे वे लोग 'लुगडा' कहते हैं। इस अवसर पर 'ओढ़नी', 'काँचुली और 'घाघरा' भी पहना जाता है।

छत्तीसगढ़ का 'सुआ' नृत्य भी बहुत प्रसिद्ध है। यह सावन की तीज से आरम्भ होता है। सावन की हरियाली तीज पर लड़कियों का मायके आना प्राय अनेक प्रान्तों में प्रचलित है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान और गुजरात में तीज किसी-न किसी रूप में मनाई जाती है। छत्तीसगढ़ में भी तीज एक प्रमुख त्योहार है।

तीज से देहातों में नृत्य और गीत का ताँता बँध जाता है। हरियाली तीज के दिन छत्तीसगढ़ की नारियाँ मिट्टी का सुआ (तोता) बनाती हैं। सुआ हरियाली का प्रतीक है जो उन दिनों प्रकृति में छाई हरियाली का प्रतिबिम्ब मात्र है—उसे एक टोकरी में रखा जाता है। मुहल्ले-पड़ोस की स्त्रियाँ उसे लेकर मैदान में पहुँचती हैं और एक स्थान पर रख उसके चारों ओर गोल घेरे में खड़ी हो नृत्य करती हैं, इसी नृत्य को 'सुआ' नृत्य कहते हैं।

वसे यह नृत्य दिवाली तक चलता है और खान-पान से निवृत्त हो महिलाएँ नृत्य-गीत का आनन्द लेती हैं परन्तु तीज से पंद्रहवें दिन विशेष समारोह होता है। उस दिन लड़कियाँ अपने-अपने घर खाना बनाकर एक हँडिया में रखती हैं। हँडिया को ऊपर से खूब सजाया जाता है। उसे सिर पर रखकर गाँव के बाहर मैदान में जाती हैं जहाँ डगर-डोर प्राय बाहर से आकर

बैठ जाते हैं। इस स्थान को 'खरिखा' कहते हैं। वहाँ खाने वाली



मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र के आदिवासियों का लोक-नृत्य

सब हँड़ियों को एक स्थान पर रख दिया जाता है। वहीं पर

लड़कियों के भाई-बन्धु भी आ जाते हैं। पहले लड़कियाँ उन खाने की हँडियों के चारो ओर खूब नाचती हैं और उसके साथ गीत गाती हैं। बाद में लड़के 'गेडो' नृत्य करते हैं। और अपनी गेडियों से खाने की हाँडियों को तोड़-फाड़ देते हैं।

'सुआ' नृत्य प्राय औरतें नीचे को झुककर करती हैं। 'सुआ' नृत्य के समय कई गीत गाए जाते हैं। परन्तु इनमें ऐसे गीतों की प्रधानता रहती है जिनमें स्त्रियों के कष्टों का वर्णन हो। तीज के पर्व की भाव भूमि ही इस प्रकार की है कि उसमें नारी के दुखदर्द की गाथा उभर आती है और वह निश्चय ही अपने माँ बाप की याद करती है।

मध्यप्रदेश का दशहरा नृत्य आदिवासियों में अत्यधिक प्रसिद्ध है। तीव्रता से अंगों और पैरों का संचालन तथा विशेष तीव्रता ही इस नृत्य की विशिष्टता है। इस नृत्य के साथ मांदर, सींग बाजा और सुरही बजाई जाती है।

गोंड लोगों का 'पदेठी' नृत्य अपना विशेष महत्त्व रखता है। यह नृत्य गोंड लोगों के जीवन को विशेष रूप से दर्शाता है। जंगलों में तेजी से चलने के लिए गोंड लोग 'पदेठी' (बाँस के बने बड़े डण्डे जिन पर ये पर रख कर चलते हैं) का उपयोग करते हैं। थोड़े से समय में ही ये लोग पदेठी की सहायता से मीलों लम्बा जंगल पार कर लेते हैं। इसी पदेठी की सहायता से ये लोग नृत्य करते हैं।

मध्यप्रदेश में करमा नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। पहले यह केवल घसिया लोगों का ही नृत्य था परन्तु अब यह इतना प्रसिद्ध हो गया है कि अब सभी लोग इस नृत्य का आनन्द उठाते हैं। इस नृत्य का 'करमा' नाम इसलिए पड़ा कि घसिया लोगों के देवता

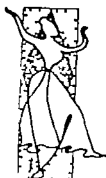
का नाम 'करमा' है। वे वसन्त पंचमी के दिन करम वृक्ष की डाली की पूजा करते हैं और नाचते हैं। अपने देवता की पूजा और अर्चना के नृत्य को भसिया लोगों ने 'करमा' के नाम से पुकारना प्रारम्भ कर दिया। अब दूसरे लोग इस बात को तो भूल गए, अब तो यह सबके मौज-मजे का नृत्य हो गया।

इस नृत्य में नर्तक दल गोल घेरे में खड़ा होता है और सभी नर्तकों के दोनो हाथों में डण्डे रहते हैं। गीत की तान और ढोल की धमाक पर डण्डे एक दूसरे से टकराते हैं। डण्डा दिण्डी, रास आदि नामों से ऐसे नृत्य प्राय सभी प्रान्तों में प्रचलित हैं। परन्तु मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग का यह 'करमा' नृत्य भी कम रोचक नहीं। नर्तकों के दल के साथ ढोल, मजीरा और झाँझ बजाने वालों का दल भी रहता है।

मध्य प्रदेश के ढोल को 'मांदर' कहते हैं। यह ढोल मिट्टी का होता है। इस मिट्टी को पका लेते हैं और दोनों ओर खाल मढ़ी रहती है। यह ढोल खूब मजबूत होता है। मिट्टी पर भी खाल या मजबूत मोटा कपड़ा मढ़ दिया जाता है।

नर्तक नृत्य के समय प्राय सुन्दर कपड़े पहनते हैं। सिर पर पगड़ी पहनने का उन लोगों में रिवाज है पर वे उस पर मयूर-पंख का मुकुट बनाकर बाँधते हैं। इनकी पीली पगड़ियों पर मयूर-पंख के मुकुट बहुत अच्छे लगते हैं। पगड़ी के अतिरिक्त धोती और कुर्ता या जाकिट उनके अन्य परिधान हैं।





10

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र भी अनेक लोक-नृत्यों का खजाना है। यहां के नृत्यों का भी मनुष्य के सामाजिक जीवन और खेती से सम्बन्ध है।

डिण्डी नृत्य

यह नृत्य आषाढ़ अथवा कार्तिक की एकादशी को होता है। डिण्डी शब्द का मतलब है—'लकड़ी का छोटा द्वार'। इस पर झण्डा होता है और उस पर सूर्य अथवा हनुमान की प्रतिमा होती है। वस्तुतः डिण्डी नाम का एक साज भी है जो इस नाच के साथ बजाया जाता है। यह साज वीणा जैसा होता है। इस नृत्य में डिण्डी वादक एक ही व्यक्ति होता है। यह नृत्य अधिक कठिन नहीं क्योंकि यह नृत्य करते हुए दल मन्दिर की ओर बढ़ता है।

काला नृत्य

यह नृत्य गोकुलाष्टमी से अगले दिन होता है। प्रसाद के

रूप में नृत्य के बाद दही चावल बाँटा जाता है। दही की हँडिया को ऊँचा टाँग दिया जाता है। युवक गोल घेरा बनाकर खड़े होते हैं। वे अपनी भुजाएँ एक-दूसरे के कन्धे पर रखते हैं और उनके ऊपर दूसरे जवान लड़के खड़े होते हैं। सबसे ऊपर एक लड़का और खड़ा होता है, वह हँडिया को तोड़ता है। उसके बाद लोग झुण्डों में नाचते-गाते और 'गोविन्दा' की धुन लगाते हुए अपने घरों की ओर चल देते हैं।

'गोविन्दा' नृत्य के समय कपड़े तो प्राय पहने ही नहीं जाते। केवल कमर में एक जाँघिया रहता है—क्योंकि नृत्य में लगातार नर्तकों पर दही अथवा छाछ गिराई जाती है।

'काला' नृत्य को गोविन्दा नृत्य उस समय कहा जाता है जब कि नर्तक मन्दिर में दही की हँडिया तोड़ कर अपने घरों को भागते हैं तो वे लोग गोविन्दा शब्द की जोर से रट लगाते हैं। इसलिए इस समय इसे गोविन्दा कहा जाता है।

टिपरी और गोफ नृत्य

इन दोनों नृत्यों में विशेष अन्तर नहीं—केवल टिपरी और गोफ का प्रयोग होने से अलग अलग नाम रख दिए गए हैं। 'गोफ' नृत्य में नर्तकों की प्राय सात-आठ स्थितियाँ रहती हैं। वे गोल घेरे में खड़े होते हैं और एक दूसरे का मुख आमने-सामने होता है। दूसरी स्थिति में एक जोड़ा एक-दूसरे की ओर पीठकर इस गोल घेरे में खड़ा होता है। यह दोनों घुटनो पर झुके हुए होते हैं। तीसरी स्थिति में अलग-अलग जोड़े चारों कोनों में खड़े होते हैं—आधे नर्तक गोल घेरे में उनके पीछे रहते हैं और कुछ नर्तक उनके बाहर दूसरी दिशा में मुँह करके खड़े रहते हैं। पाँचवी स्थिति में वे पंक्तियों में खड़े होते हैं। नर्तकों के हाथों में छोटी-

महाराष्ट्री परम्परा के अनुसार मंच पर सबसे पहले गणपति और सरस्वती जी प्रकट होती हैं। उनके बाद शेष आठों अवतार आते हैं और नतक इनका अभिनय करता है।

महाराष्ट्र के तटवर्ती इलाकों में कोली लोग रहते हैं। वे अपने दैनिक कार्यों की झाँकी ही नृत्यों में दिखाते हैं। इसे 'कोल्याचा' नृत्य कहते हैं। वे इसमें मछलियाँ पकड़ना दिखाते हैं। इनमें मद-औरतों के कुछ सम्मिलित नृत्य भी हैं।

गोरीपूजन के दिन भी मछियारे नाचते हैं। इनमें 'होली' नृत्य भी काफी प्रसिद्ध है। होली का आग को वे हुताशनी कहते हैं। वे उसके चारों ओर खूब आनन्द मनाते हुए नाचते हैं।



11

गुजरात



भारत की प्राचीन श्रद्धा, भक्ति और अपने देवी-देवताओं के प्रति आत्मविस्मृति का प्रतीक-'गरबा' नृत्य है। गुजरात की नारियों ने 'गरबा' को इतना ऊँचा आसन दे दिया है कि वह अब सभी धार्मिक अवसरों पर आदरणीय स्थान प्राप्त करता है। यह हमारे नृत्यों की पवित्रता का जीता-जागता उदाहरण है। नृत्य और संगीत का विलास के साथ सम्बन्ध जोड़ने वालों के लिए 'गरबा' अथवा हमारे दूसरे लोक-नृत्य एक चुनौती हैं।

'गरबा' का नवरात्र के पावन दिनों में जन्म हुआ। यह तो ठीक नहीं कहा जा सकता कि नवरात्र और गरबा का कब से सम्बन्ध चला आ रहा है परन्तु इसका मूल उस भावना में है, जब मनुष्य में सन्तान की इच्छा उत्पन्न हुई। उसके बाद हिन्दुओं ने यह आवश्यक समझा कि माता-पिता की मृत्यु के बाद आवश्यक कार्यों के लिए उनकी सन्तान आवश्यक है।

नारियाँ तीर्थयात्रा के लिए आती हैं। वे 'गरबा' नृत्य और संगीत द्वारा अपनी भक्ति प्रकट करती हैं। उसके बाद मन्दिर का पुरोहित प्रत्येक महिला की हथेली पर एक चिह्न अंकित कर देता है। हथेली पर चिह्नांकित नारी को पुत्रवती मान लिया जाता है और उसकी दाहक्रिया अथवा उसके बाद के कर्म कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

द्वारिकाजी के मन्दिर के पुजारी ने जिस श्रद्धाशील नारी की हथेली पर पुत्रवती होने का चिह्न अंकित कर दिया, वह भले ही पुत्रवती न हो परन्तु उसे उसकी पवित्रता, श्रद्धा, भक्ति और तल्लीनता के कारण सर्वमान्या माता की पदवी मिल जाती है।

'गरबा' गुजरात की अनोखी देन है और इसीलिए गुजरात को इस पर गर्व भी है। गुजरात ने इस नृत्य के साथ जिन अनूठी भावनाओं को जोड़ दिया है, उनके कारण यह और भी महिमामय बन गया है। आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से यह नृत्य गुजरात के ग्राम-ग्राम, गली-गली और घर घर में आरम्भ हो जाता है। शरद की सुहानी रातें, 'गरबा' नृत्य करती हुई महिलाओं की हथेली की ताल, पैर का परिचालन और 'गरबा-गीतों' से और भी सजीव हो उठती हैं।

आश्विन के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को पूजा का घट सजाया जाता है। 'गरबा' का घट बहुत ही सुन्दर होता है। घट में काटकर फूल-पत्तियाँ बनाई जाती हैं और मध्य में घी का दीपक रखा जाता है। इस घट को 'गरबी' कहते हैं।

आज प्रतिपदा अर्थात् पहला नवरात्र है। सभी ने अपने अपने घर में गरबो घट सजाया है, देवी की पूजा का सब साज तैयार है। सभी ने नए-नए वस्त्र पहने हैं। जैसा बन पड़ा उसके

अनुसार सभी ने आभूषण भी धारण किए हैं। वस्त्रों में, आभूषणों में, साज सज्जा में गरीबी अमीरी का भेद स्पष्ट हो उठता है परन्तु 'गरवा' का प्रसन्नता के सम्बन्ध में सब एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर हैं। गरवा सबके लिए प्रसन्नता का सन्देश लेकर आया है। रात भी नौ बजे तक पास-पड़ोस की औरतें भोजन आदि से निबट जाएँगी और वे सब अपने-अपने घट लेकर एक के घर जाएँगी। वह उन्हें अपना घट लिए हुए द्वार पर मिलेगी। इसके बाद वे अपने-अपने घटों को एक स्थान पर रखकर उनके चारों ओर एक गोल घेरा बना लेंगी। अब यह मण्डली बहुत रात तक 'गरवा' नृत्य में मस्त रहेगी।

इस गोल घेरे में नाचने वाली मण्डली की मुखिया वही महिला है, जिसके घर नृत्य हो रहा है। वह गीत की एक कड़ी पहले गाती है, उसके बाद सारी मण्डली उसे दोहराती है। नृत्य की गति, ताल और लय बहुत कठिन नहीं परन्तु उसमें सौम्यता अवश्य है। नर्तक-मण्डली पहले एक ओर झुकती है और फिर दूसरी ओर। पैर की पटकन के साथ वह दोनों हाथों से ताली बजाती जाती है। इसी प्रकार घण्टों चक्कर चलता रहता है। नृत्य के साथ सिलसिला समाप्त होने में ही नहीं आता। एक गरवा गीत की बानगी देखिए—

> आसो मासे शरद पुनमनी रात जो
> चाँदलियो ऊग्यो रे सखि म्हारा चौक माँ
> ससरो म्हारो वेरा मानो देव जो
> सासूजी देरासर की रे पूतली
> जेठ म्हारो भाखाजी ने मेघ जो
> जेठानी मूंजू के बावल बोजली

दीयर म्हारो चाँपलियानो छोड जो
देरानी चाँपलिया केरी पाँखड़ी
नाणदी म्हारी बाड़ी मानो वेल जो
नाणदोई म्हारा बाड़ी माने बाँदरो
गोरी नो परणियो चतुर सुजान जो
परणियो वाहरण कमावा जाय जो
वाहरण कमाई ने लावे खारेक-टोपरा
खारेक खाऊँ तो गोरी ने ऊँचावाले।

'आश्विन मास की शरद पूर्णिमा की रात है। हमारे आँगन में चाँद उदय हुआ है। हमारे ससुरजी तो देवता हैं और सास देरासर की देवी। जेठजी आषाढ़ के बादल हैं और जेठानी जो उन बादलों में चमकने वाली बिजली। हमारा देवर चमेली का पेड़ है और देवरानी चमेली की पखुड़ी। हमारी ननद बाग की वेल है और ननदोई बाग का बन्दर। मुझे चतुर सुजान ब्याहा है। वह विदेश में व्यापार करने जाता है और वहाँ से छुहारे, नारियल लाता है पर मुझे छुहारे नहीं भाते।

नृत्य का असली साज ढोलक है। हाथों से ताली पैर की पटकन, और झाँझन की झनकार ढोलक के साथी हैं। अब तो कई स्थानों पर एक-दूसरे वाद्य यन्त्र भी शामिल कर लिए जाते हैं पर जो बात ढोलक, ताली और पैर की पटकन में है, वह औरों में नहीं।

नृत्य के बाद प्रसाद बाँटा जाता है जिसे वे लोग 'सलहानी' कहते हैं। इसी प्रकार यह नृत्य नौ दिन चलता है और अन्तिम दिन 'गरबी' घट नदी या सरोवर में विसर्जित कर दिया जाता है।

जिस प्रकार 'गरबा' नृत्य गुजरात का प्रतिनिधि नृत्य है

उसी प्रकार गुजरात का 'टिप्पणी' नृत्य भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह नृत्य गुजरात के श्रमजीवी वर्ग का अपना नृत्य कहा जाता



गुजरात-सौराष्ट्र की स्त्रियाँ 'टिप्पणी' नृत्य की एक सुन्दर मुद्रा में

है। फसल कटने के पश्चात् स्त्रियाँ खलिहानों में जाती हैं। खलिहानों की भूमि को कूटकर समतल किया जाता है, उसे लीपापोता जाता है। अच्छी फसल को देखकर कृषक महिला उन्मादित हो उठती है। जल्दी-जल्दी खलिहान तैयार करने के लिए 'टिप्पण' उठा लाती हैं। अच्छी फसल के उन्माद में नृत्य भी करती हैं, गाती भी हैं। 'टिप्पणी' नृत्य भी 'गरबा' की भाँति गुजरात का प्रमुख नृत्य कहा जा सकता है। 'टिप्पणी' नृत्य के साथ मधुर गुजराती गीत उसका साथ देता है तथा टिप्पणी की भूमि पर थाप उसकी

ताल और लय साधती है।

कृष्ण का गुजरात के नृत्यों पर विशेष प्रभाव है क्योंकि कृष्ण द्वारिका में राज्य करते रहे हैं, यही कारण है कि गुजरात का 'रासड़ा' नृत्य भी अत्यन्त प्रसिद्ध है।

गुजरात में 'मवाई' नामक नृत्य-नाटिकाओं का विशेष प्रचलन है। यह नृत्य-नाटिका गुजरात में अत्यधिक प्रसिद्ध है। लोग मवाई के मन्त्रमुग्ध दर्शक बन सारी-सारी रात आँखों में ही बिता देते हैं। मवाई के नृत्यों का अपना विशिष्ट महत्त्व है। गुजरात का मवाई राजस्थानी ख्याल तथा मवाई से पर्याप्त समानता रखता है। केवल गुजरात के एवम् राजस्थान की मवाई नृत्यों में ही अन्तर होता है। नाटक की कथावस्तु में पूर्णरूपेण समानता ही होती है।

आज लोक नृत्य अपनी सकुचित सीमा से बाहर निकल पड़े हैं। वाल्टविटमैन के अपने सम्बन्ध में कहे हुए शब्द आज लोक-नृत्य के सम्बन्ध में ठीक प्रतीत होते हैं कि मैं खुले पथ पर निकल आया हूँ, मेरे श्वास खुली वायु के प्रतीक हैं—पूर्व-पश्चिम मेरे हैं—उत्तर-दक्षिण मेरे हैं।





12

केरल : कथकली

जिस प्रकार भारत के दक्षिण-पूर्वी भाग में भरत नाट्यम् प्रसिद्ध है उसी तरह उसके दक्षिण-पश्चिमी भाग में, जिसे अब केरल कहते हैं, 'कथकली' नामक नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। यह कालीकट से लेकर कुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ प्रदेश है। अभी पिछले दिनों कोचीन और त्रावणकोर की दो रियासतें एक संघ के रूप में परिवर्तित हुईं। इन्हीं दोनों को और मद्रास के मालाबार जिले को मिला कर यह प्रदेश बनता है। इसके दूसरी ओर दक्षिणी घाट की पहाड़ियाँ समुद्र के किनारे हैं। ताड़ और नारियल के वृक्षों ने इस क्षेत्र को विचित्र सुन्दरता प्रदान की है।

मालाबार के इतिहास में अभी जहाँ नवीनता आई है, वहाँ उसका बाहर के संसार से बहुत महत्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है। मालाबार के खुले बन्दरगाहों को विदेशी व्यापारियों ने सदा ललचाई निगाहों से देखा है। उसकी अनेक बातों में आज भी विदेशी प्रभाव स्पष्ट है।

'कथकली' आज बहुत विकसित नृत्य बन चुका है और इसकी गिनती भारत के शास्त्रीय नृत्यों के साथ होने लग गई है परन्तु हमें उसके सर्वसाधारण वाले स्वरूप को ही सम्मुख रखना है। आज दक्षिण के इस दक्षिण-पश्चिमी भाग में जितने भी लोक-नृत्य हैं, वे कथकली के पूर्वरूप ही हैं।

कथकली के प्रति प्रेम

केरल के निवासियों में कथकली के प्रति बेहद प्रेम और रुचि है। केरल के देहातों में चांदनी रात की निस्तब्धता को कानों को फाड़ने वाली ढोल की आवाज भंग करती है, जिससे 'कथकली' नृत्य होने की घोषणा की जाती है। ढोल की आवाज जहाँ तक पहुँचती है वहाँ के सभी बच्चे, बूढ़े, जवान और स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो जाते हैं। ऊपर चाँद और तारा का चँदोवा होता है और नीचे घास या रेत। दर्शक प्रातःकाल तक कथकली का आनन्द लेते रहते हैं। प्रायः ग्राम में कोई विशेष मंच नहीं बनाया जाता। एक ओर परदा पकड़े दो आदमी खड़े रहते हैं और उनके सामने एक ओर चार पाँच-फुट ऊँची मशाल जलती रहती है अथवा तेल से भरा हुआ बड़ा सा दीपक। कई बार जिसमें १५-२० सेर तक तेल भरा रहता है।

कथकली के सम्बन्ध में कोई विशेष धारणा निश्चित नहीं की जा सकती कि कब से उसकी उत्पत्ति हुई। हाँ, उसमें श्रीकृष्ण की पूजा की भावना अवश्य थी। कहते हैं कि १६५७ में कालीकट के मुखिया ने श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में नृत्य-नाटिका की रचना की। उसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि उन्हें भगवान् कृष्ण ने दर्शन दिए और उन्हें मयूर के पंख भेंट किए। इसलिए यह प्राचीन प्रथा है कि कथकली के नर्तक मयूरपंख की कलगी पहनते हैं।

कालीकट के मुखिया की धारणा भगवान् की भक्ति के रूप में थी। कथकली में धारणा आज भी है तो यही।

इसे श्रीकृष्णन अट्टम कहते हैं। श्रीकृष्णन अट्टम की ख्याति जब मालाबार में फैली तो त्रावणकोर के राजा ने उससे प्रार्थना की कि वह श्रीकृष्णन अट्टम के प्रदर्शन के लिए दल भेजे परन्तु उसने इन्कार कर दिया। यही इन्कार कथकली की उत्पत्ति का कारण बना। तब उन्होंने रामन अट्टम (रामायण का नृत्य नाट्य) की रचना की। इसके अभिनय और प्रदर्शन के लिए उसने कोट्टायम के राजा और दो नम्बूद्री ब्राह्मणों की सहायता की। उसके बाद तो धीरे-धीरे सारी रामायण का नृत्य में अभिनय होने लगा। उस समय कथकली का प्रदर्शन प्राय मन्दिरों में होता था। उस समय के जाति बन्धनों के कारण नीच वर्णों को मन्दिरों में जाने की आज्ञा न थी। जिस रूप में कथकली द्वारा मन्दिर में पूजा होती थी और नीच वर्ण उसे न देख सकते थे अत: कथकली का असली रूप भी खुले में प्रदर्शन के लिए बदल गया। इससे स्पष्ट है कि जाति बन्धनों का भारत के रंगमंच पर भी प्रभाव पड़ा। नाट्य करने वाले व्यक्ति ने अपना असली रूप दिखाने के लिए मेकअप करना आरम्भ किया। मुद्राओं पर अधिक ज़ोर दिया जाने लगा और तेज़ी लाने के लिए ढोल का प्रयोग किया जाने लगा। पहले 'कथकली' के नतक गाते भी स्वयं थे परन्तु ढोल धमाके की तेज़ी में वे अपने गान, ताल और लय में समता न रख सके। इसलिए गायक और वादक अलग बने और कथकली एक मूक नृत्य बन गया।

कथकली का अर्थ है कथा-नृत्य। यह ऊपर की कहानी से स्वयं स्पष्ट हो जाता है—अर्थात् कथकली का आधार भारतीय

महाकाव्य रामायण और महाभारत ही हैं और यह नृत्य ताँडव के समान अधिक गतिशील, श्रमसाध्य और वीर रस पूर्ण नृत्य बना। भरत-नाट्यम् में जहाँ लास्य और उसके कारण शृङ्गार रस पनपा वहाँ कथकली में ताण्डव की भावनाएँ प्रधान होने से इस के द्वारा वीर रस का सहारा मिला। वैसे मालाबार का मोहिनी अट्टम (मोहिनी नाटय) के नाम से लास्य भी है। मोहिनी अट्टम का प्रदर्शन केवल महिलाएँ ही करती थी। धीरे-धीरे यह पेशेवर नर्तकियों (वेश्याओं-गणिका) के हाथ में चला गया। जब केरल के महाकवि वालाथोल ने इस नृत्य के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया तो लोगों ने समझा कि व वेश्याओं को प्रोत्साहन दे रहे हैं। उन्होंने महाराज से प्रतिबन्ध लगाने की माँग की। उस समय का लगा हुआ प्रतिबन्ध पूर्णरूप से 1950 में उठाया गया।

कहते हैं कि उत्तरी कोट्टायम के राजा का स्वप्न में सब नर्तकों की विभिन्न वेषभूषा दिखाई दी। यह प्रसिद्ध है कि स्वप्न में उसे केवल ऊपर का भाग ही दिखाई दिया। कथकली में प्रायः सभी नर्तक शरीर के ऊपर के भाग अथवा यों कहिये कि चेहरे के अनेक तरह के मेकअप से ही विभिन्न पात्रों का अभिनय करते हैं। नायक अथवा अच्छे व्यक्तियों का, जिनमें देवताओं के से गुण और स्वभाव होते हैं, मेकअप का रंग हरा है। उनको चावलों के आटे से पोत दिया जाता है। इन्द्र कृष्ण, राम, लक्ष्मण, पाण्डवों आदि का यह रंग है। राक्षस जिन्हें कट्टी कहते हैं, उनके चेहरे को हरा पोता जाता है परन्तु उस पर बड़े-बड़े लाल रंग की लपटों के निशान होते हैं। उनके चेहरे के विभिन्न अंगों के चारों ओर काली धारी होती है। गालों पर चावलों के आटे की लकीरें होती हैं। यह मेकअप रावण, कीचक और इन्हीं

वैसे व्यक्तियों के लिए निश्चित है ।

बाली, दुशासन और सुग्रीव आदि पात्रों की सज्जा बहुत ही अनोखी रखी गयी है। उनका मुख लाल रंग से पोत दिया जाता है और उस पर काली धारियाँ बनाई जाती हैं। माथे और नाक पर दो बड़े-बड़े सफेद मस्सों के से दाग बना दिए जाते हैं। काली धारियाँ गाल के पास से बनायी जाती हैं उनके किनारे से सफेद कागज के टुकड़े से लटकते रहते हैं। दाँतों को काला रंग दिया जाता है और मुँह में दोनों ओर पशु के से बड़े-बड़े दाँत बनाए जाते हैं। इसी प्रकार ऋषियों, ब्राह्मणों और महिलाओं के लिए विभिन्न रंग निर्धारित हैं।

कथकली का नर्तक अपने शरीर पर आस्तीनदार कुर्ती पहनता है जिसका रंग चेहरे के मेकअप के रंग से मेल खाता है। टाँगों में वह एक घघरी सी पहनता है जो घुटनों के नीचे तक लटकती है। यह कपड़े की कई तहें होती हैं। नर्तक की गर्दन में कपड़े के फीते से लटकते रहते हैं। इनके साथ करताल जैसी शकल के गले की दो प्यालियाँ सी लटकती रहती हैं। सिर पर प्राय किरीट होता है जिसकी गोलाई में दीप्ति मण्डल का सूचक एक चक्र सा होता है जो पात्र की महत्ता के अनुसार छोटा-बड़ा होता है।

दाढ़ी (ठोढ़ी) वाले पात्रों के लिए सिर की वेशभूषा में हैट या टोपी निश्चित है जिसके किनारे चौड़े होते हैं। हनुमान जी की टोपी में अनेकों चमकदार सितारे लगे रहते हैं जो उनकी उछलकूद के समय खूब चमकते हैं। कुछ टोपियों में कानों के पास पीछे की ओर मयूर के पंख खोंसे रहते हैं। सन्तों और ऋषियों की वेषभूषा बहुत तकलीफ देह होती थी। अब उसमें बहुत हेर-

फेर हो गया है। परशुरामजी केवल जाँघिया और गले में मोटा सा जनेऊ पहने मच पर प्रकट होते हैं। औरतों की पोशाक बहुत सादी होती है। वे फूलदार घघरी और कुर्ती पहनती हैं। कथकली नर्तक के पाँव नंगे होते हैं और पैरों में वह बड़ी घंटियाँ घुँघरू बाँधते हैं। बाएं हाथ की उँगलियों में चाँदी के छल्ले से पहने जाते हैं। कुछ भी हो कथकली के नर्तक की वेशभूषा बहुत ही प्रभावशाली होती है चाहे उससे नर्तक को कितनी ही असुविधा हो।

'कथकली' की साधना बहुत कठिन है। इसका पूर्ण अभ्यास करने और सिद्धहस्त बनने के लिए कम से कम सात-आठ साल के समय की आवश्यकता है। कथकली की मूल मुद्रा अथवा सोज का अभ्यास करने के लिए तीन-तीन साल मालिश की आवश्यकता रहती है। उसे कुछ कलाबाजियों का भी अभ्यास करना होता है। जिस तरह कथकली में प्रत्येक अंग के स्वतन्त्र परिचालन का अभ्यास आवश्यक है उसी तरह आँखों को भी पूरी कसरत करनी पड़ती है।

कथकली का नर्तक जब रंगमंच पर आता है तो उसकी आँख में एक बीज डाली जाती है जिससे अक्षिगोलक फूल जाता है और आँख पहले से दुगुनी खुली मालूम होती है। इस प्रकार वह आँख के सहारे से जिन भावों का प्रदर्शन करता है वह और भी स्पष्ट हो उठते हैं। संक्षेप में कथकली का नर्तक शरीर के प्रत्येक अंग से वह क्रियाएँ करता है जो शारीरिक तौर पर असम्भव होती हैं।

कथकली नृत्य में मुद्राओं की बहुत प्रधानता है। कथकली के प्रशिक्षण के बाद नर्तक पाँचसौ के लगभग मुद्राओं मे प्रवीण हो जाता है। उदाहरणस्वरूप हाथ की अंगुलियों, अंगूठे- कलाई

आदि की विभिन्न मुद्राओं को समझने के लिए स्थितप्रज्ञ होकर उनके अध्ययन की आवश्यकता है।

नृत्य के साथ ढोल, बाँसुरी आदि का प्रयोग होता है। ढोल प्राय: चार होते हैं और ये दो तरह के होते हैं। एक, गले में लटका कर दोनों हाथों से बांस की लकड़ी से पीटा जाता है। इसकी ध्वनि बहुत ही कठोर और ऊँची होती है। इसे छेंडाई कहते हैं। दूसरा, मुद्धाल भरत नाट्यम् के मृदग के समान होता है। जिससे विभिन्न ध्वनियाँ और स्वर पैदा किए जा सकते हैं। परन्तु इसे मृदग से भिन्न तरह से बजाया जाता है। नर्तक मण्डली के लिए इन ढोलों का बहुत ही महत्त्व है। प्रत्येक नर्तक और वादक समारोह से पहिले श्रद्धापूर्वक दोनों हाथ जोड़ कर इनका स्पर्श करता है और फिर अपने हाथ अपने चेहरे पर लगाता है।

कथकली दृश्यावलियों पर आधारित होता है। इसका सम्बन्ध रामायण और महाभारत से है। आजकल उनके सारे दृश्यों को दिखाना कठिन है। इनमें लगभग बीस-पच्चीस आज प्रसिद्ध हैं। पुराप्पद नामक आरम्भिक नृत्य में नायक प्रकट होता है। नायक के देवत्व और उसको विषय की घोषणा की जाती है और उसके बाद सम्बन्धित कहानी के दृश्य आने लगते हैं। कथकली में थिरानोत्तम नामक भाग भी बहुत प्रभावशाली होता है। यह प्राय दैत्य अथवा खल-नायकों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इस समय नृत्य की तेजी बहुत बढ़ जाती है और ढोल की आवाज भी कानों को फाड़ने लगती है। इसलिए गायक अपना गाना बन्द कर देते हैं। पीछे के परदे को मजबूती से पकड़ लिया जाता है और दो हाथ जिसमें एक पर चाँदी का पत्रा चढ़ा होता है.

परदे को बीच में से पकड़ लेता है। यह रंगमंच पर एक तूफान सा खड़ा कर देता है। परदे को खींच कर उसे कभी प्रकाश देने वाले दीपक को छुआ करता है और अन्त में परदे को नीचे गिरा दिया जाता है। एक व्यक्ति परदे को एक तरफ डाल देता है। इसका भाव यह है कि कथा यहाँ से समाप्ति की ओर बढ़ती है। चिरानोत्सम की तरह महिमाओं के चरित्र का प्रवचन करने के लिए 'कुम्मी' नृत्य होता है 'कुम्मी' पूर्णतया कथकली के मुख्य दृश्य युद्ध, प्रेम, वीरता के नृत्य कोमलता और धार्मिक कृत्यों पर आधारित होता है। अन्त में धार्मिक नृत्य होता है जिसमें नर्तक एक हिन्दू देवता के रूप में आता है। यह कथा का सम्बन्धित भाग हो अथवा जोड़ा गया हो। इसका भाव यह है कि दर्शकों और नर्तकों को भगवान् की कृपा प्राप्त हो। अनेक दृश्यों के साथ भीमसेन द्वारा दुःशासन का वध दिखाया जाना भी आवश्यक सा है। अधिकांश वीरतापूर्ण दृश्यों में प्रेम कथाओं के दृश्य अनोखे से प्रतीत होते हैं। इनमें उत्तरा स्वयंवर और रावण विजय बहुत प्रसिद्ध हैं।

केरल और तमिलनाड में केरल पर आधारित और अनेक नृत्य हैं। यह अत्यधिक विकसित कथकली के समान कठिन और बंधनपूर्ण नहीं होते। इनमें कुछ को तो जानकार लोग कथकली का आधार ही मानते हैं। इनमें 'अहमतुल्लल' तो गरीब लोगों का कथकली कहा ही जाता है। इसमें एक अकेला नर्तक ही सारी कथाओं को स्वयं ही नृत्य द्वारा उपस्थित करता है।

दक्षिण के अन्य नृत्य

कथकली के अतिरिक्त दक्षिण के अन्य प्रदेश अन्य कई नृत्य परम्पराओं के घर हैं। हमें यहाँ नृत्य की उत्पत्ति की चर्चा नहीं

करती परन्तु दक्षिण के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि दक्षिण में अर्जुन को नृत्य के प्रसार का मूल माना जाता है। अपने अज्ञातवास के समय अर्जुन द्वारा उत्तरा को नृत्य सिखाने की कथा सभी जानते हैं। यहीं से यह नृत्य विशुद्ध भारत नाट्यम के रूप में आगे दक्षिण में फैलता गया। अर्जुन ने दक्षिण के राजा पुण्डरीक की पुत्री उलूपी से विवाह किया था। अर्जुन ने उसे नृत्य-संगीत की शिक्षा दी और सुदूर दक्षिण में नृत्य-संगीत का प्रसार किया।

दक्षिण के नृत्यों से प्रकट है कि उनमें दो भावनाएँ सबद्ध हैं। धार्मिक भावना वहाँ के मन्दिरों से स्पष्ट हो जाती है—क्योंकि दक्षिण मन्दिरों का घर है और वहाँ प्रत्येक मन्दिर में 'महामण्डप' बना होता है जहाँ देवदासियाँ अपने नृत्य द्वारा देवी-देवताओं को प्रसन्न करती आई हैं। पहले-पहल सम्भवत यह प्रथा दक्षिण के विष्णुवर्द्धन नामक राजा ने आरम्भ की। उसकी पत्नी नृत्य सरस्वती अपने समय की प्रसिद्ध नृत्य विशारदा थी। उसने अपने मन्दिर में महामण्डप बनवाया और वहाँ नृत्य-संगीत द्वारा विष्णु की पूजा करने लगी। यही परम्परा आगे चलकर देवदासियों ने जारी रखी। इसलिए दक्षिण में नृत्य के प्रसार और उसे जीवित रखने में देवदासियों का जो योग है उसे भुलाया नहीं जा सकता।

यह कहना कठिन है कि देवदासियाँ आरम्भ में शास्त्रीय नृत्य करती थीं या जनसाधारण के नृत्यों से ही उन्हें प्रेरणा मिली। कुछ भी हो इतना अवश्य सत्य है कि यदि पहले जन-साधारण के नृत्य प्रचलित थे तो शास्त्रीय नृत्य उन्हीं का विकसित रूप बना—अर्थात् दोनों का यह आदान-प्रदान सदा से चलता आया है।

भारत के अन्य नृत्यों की तरह दक्षिण में भी लोक-नृत्यों में धार्मिक और कृषि सम्बन्धी भावनाएँ मौजूद हैं। और कहीं कहीं तो यह दोनों बातें आपस में इस तरह मिल गई हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

तिरुचिरापल्ली का 'कातिवाई' नृत्य इसका स्पष्ट उदाहरण है। यह नृत्य मुख्य रूप से शिवहार कामदेव को दग्ध करने के कथानक से सम्बन्ध रखता है। इस नृत्य से सम्बन्धित समारोह पन्द्रह दिन तक चलता है। पहले दिन यज्ञाग्नि प्रज्वलित की जाती है। इससे स्पष्ट है कि नृत्य समारोह धार्मिक रूप रखता है, परन्तु यह तो उसका एक पहलू है। दूसरा पहलू यह है कि लोग उस पवित्र यज्ञाग्नि में से आधी जली हुई लकड़ियाँ उठा लेते हैं और उन्हें अपने खेतों में लाकर गाड़ देते हैं। उनका विचार है कि ऐसा करने से उनकी फसलों को कीड़ा नहीं लगेगा।

'कुड्डाकुसु' विशुद्ध ग्रामीण नृत्य है। इसमें कृष्ण की बाणासुर पर विजय दिखाई जाती है। यह दक्षिण में काफी व्यापक है। विजगापट्टम में नाचने-गाने का पेशा करने वाला एक फिरका है। इन्हें 'भगवान् तुल' कहते हैं। यह लोग भारतीय पौराणिक कथानकों से अनेक नृत्य-कथाएँ दिखाते हैं—साथ ही यह लोग प्रतिदिन की समस्याओं का प्रदर्शन भी करते हैं। बल्कि कथानकों को उन्होंने आज की समस्याओं के माध्यम से तोड़-मरोड़ लिया है कि देखते ही बनता है। उदाहरण के समुद्र मथन के समय जगमोहिनी के रूप में भगवान् ने दानवों मोहित किया और यह भरोसा दिलाया कि अमृत उन्हें भी जाएगा पर बाँट दिया देवताओं को। इन नर्तकों ने इस को दूध बेचने वाली का रूप दे दिया। दूध बेचने वाली

नगर में दूध बेचने जाना चाहती है पर नगर में आने से पहले चुंगी देनी पड़ेगी, पर उस दूध बेचने वाली भोली ग्वालिन के पास रुपया पैसा तो है नहीं। चुंगी वाला उस समय उसे चुंगी के रूप में आलिंगन और चुम्बन की माँग करता है। सम्भवत: नर्तक इससे समाज में फैले भ्रष्टाचार की ओर इंगित करता है। आजकल कथकली में भी इसी तरह के कथानकों को स्थान मिलने लगा है जो समाज की नैतिक गिरावटों की ओर संकेत करते हैं।

तंजोर में 'किलाट्टम भम्मपोंगा' नामक एक नृत्य है। इसमें प्राय लड़कियाँ एक बड़े दीपक अथवा किसी मूर्ति के गिर्द घेरा बना कर नाचती हैं। वे हाथ पाँव पटकने की नृत्य क्रियाओं के साथ ताली बजाती और गाती हैं। पर ताली बजाना प्राय उसी समय होता है जब ढोल बजाने वाला उनकी सहायता न कर रहा हो। यह नृत्य फसलों और उपज से भी सम्बन्ध रखता है—क्योंकि उन दिनों भी यह नृत्य होता है और प्राय उन दिनों इसी तरह के सरल नृत्य दक्षिण भारत सारे देश में ही प्रचलित हैं।

'कुम्मी' अकेले केरल का ही नहीं, वरन् दक्षिण के अन्य अनेक स्थानों का प्रसिद्ध लोक-नृत्य है। नृत्य में भाग लेने वाली औरतें एक दूसरी के हाथ में हाथ डाले घेरे में नाचती हैं। इस नृत्य का प्रयोजन यही है कि देवताओं की कृपा से फसलें खूब अच्छी हों। वे क्रियाओं में फसलें काटने आदि का अभिनय भी करती हैं। उसी तरह लम्बडी औरतें भी नाचती हैं और उनका नृत्य भी फसल से सम्बन्धित है। त्रिचनापल्ली के निवासी भी नृत्य करते हैं। वे अलग अलग दलों में नृत्य करते हैं। यहाँ यह नृत्य रात पड़ने पर आरम्भ होता है और प्रात तक चलता रहता है। नृत्य में भाग लेने वालों के नये दल आते हैं और थके

हुए लोग बैठते जाते हैं।

दक्षिण में अनेक आदिवासी जातियाँ निवास करती हैं। यह सभी नृत्य उनमें प्रचलित हैं और गोल घेरे में सीधे-सादे नृत्य तो उनकी विशेषता है।

कुरावन्जी तमिल भाषा-भाषी प्रदेश मद्रास अथवा जिसे तमिलनाड भी कहते हैं—इस तरह के कई नृत्यों में 'कुरावन्जी' नृत्य काफी प्रसिद्ध है। यह वहाँ के पहाड़ी इलाके का नृत्य है और वहाँ के खानाबदोश कुराव लोग इससे अपना मन बहलाते हैं। इनका मुख्य धन्धा भाटड़ों वाला अर्थात् ज्योतिष से अपनी आजीविका चलाते हैं। इनकी लड़कियाँ किसी भी आदमी को जो उन्हें पैसा दे अपना नाच दिखाने और उसकी किस्मत का लेखा-जोखा बताने को तैयार रहती हैं।

'कुरवान्जी' नृत्य को भरत नाट्यम की प्ररणा देने वाला नृत्य माना जा सकता है। जैसा कि हम मानते हैं कि लोक-नृत्यों में से ही शास्त्रीय नृत्यों का विकास हुआ, 'कुरवान्जी' इस विचार से भरत नाट्यम का पुरखा माना जा सकता है। वैसे यह नृत्य बहुत ही सरल है परन्तु है बड़ा सुखद और मनोहारी। मद्रास आदि नगरों के कलाकारों ने कुरवान्जी नृत्य-नाटिकाओं का निर्माण किया है—इसी से पता चलता है कि यह नृत्य कितना आकर्षक है।

दक्षिण की गोंड सावधा आदि जातियों के साथ हैदराबाद के उत्तरी क्षेत्र में रहने वाले गोंड लोगों को नहीं भुलाया जा सकता। इन लोगों का यह विचार है कि वे पाण्डवों के वंशज हैं। इनका रहन-सहन और अनेक रीति-रिवाज इनके अपने हैं। यह लोग विजयदशमी के बाद दस-पन्द्रह दिन खूब आनन्द मनाते हैं। नर्तकों के झुण्ड-के-झुण्ड एक दूसरे के गाँव जाते हैं। पहले युवक

लोग पहुँचते हैं। उसके बाद गायक लोग और उनके बाद बूढ़े। यह लोग अपने हाथों में छोटे-छोटे डंडे लेकर नाचते हैं। यह 'डाण्डरिया' नृत्य है। इसी तरह का नृत्य राजस्थान और महाराष्ट्र में भी प्रचलित है।



आंध्र प्रदेश में हैदराबाद के समीप बसे अफ्रीकी 'सिद्दी' आदिवासी
इनका नृत्य अपनी विशेष प्रमुखता रखता है

हैदराबाद का 'वायकम्भा' नृत्य भी काफी प्रसिद्ध है। यह नई ब्याही लड़कियाँ बहुत भावना से करती हैं। इस नृत्य का एक पुरानी कहानी से सम्बन्ध बताया जाता है। एक राजा के आवाई नाम की एक लड़की थी। वह घर का काम कुछ न जानती थी। ससुर ने उसे काम सिखाने को कहा। पहले तो गोबर थापने को कहा गया पर उससे वह भी न हुआ। सास ने

बुरा भला कहा जिस पर वह बाप के घर लौट आई।

हैदराबाद में कुछ अफ्रीकी-वंशज आदिवासी रहते हैं। जिन्हें सिद्दी कहते हैं। इन्होंने अफ्रीकी नृत्यों को अभी तक जीवित रखा है।

ये अफ्रीकी लोग बहमनी राजाओं द्वारा इस प्रदेश में बसाए गए थे। इनके विवाह आदि के अवसर के नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध हैं जिसमें विवाह के नृत्य प्रमुख हैं। लड़का अपने कबीले से दूसरे कबीले में आता है, वहाँ आकर अपना शौर्य प्रदर्शन करता है। लड़की उस पर मुग्ध हो जाती है। लड़की के माता-पिता बिना किसी विशेष शर्त पूरी किए कन्या को देने के लिए तैयार नहीं हैं। लड़का अपनी वीरता से उस शर्त को पूरा करता है और अन्त उस लड़की पर विजय प्राप्त कर उसे अपने कबीले में ले जाता है।

दक्षिण में कुछ नृत्य ऐसे भी हैं जो पुरानी जंगली अवस्
के अवशेष हैं। यह युद्ध-नृत्य हैं। तजौर के मुसलमानों में मयू
और सिंह-नृत्य प्रचलित है। इनमें काफी साज-सज्जा और ख
कपड़ों की जरूरत होती है।





13

राजस्थान

राजस्थान का जितना अधिकांश प्रदेश मरुस्थल के रूप में नीरस और विद्रूप है यह उतना ही परम्परागत लोक संस्कृति के कारण समृद्ध है। लोक-नृत्य भी तो उसी संस्कृति के अंग हैं और वे भी सुन्दरता, मोहकता तथा विभिन्नता के कारण उतने ही मोहक हैं।

जिस प्रकार राजस्थान के गीत, वहाँ की जातियाँ, वहाँ के रीति रिवाज, वहाँ के पहराव, वहाँ की बोलियाँ तथा वहाँ के वाद्य-यन्त्र आदि अनोखे और कलापूर्ण हैं। देखिए, वहाँ की एक मोटी सी विचित्रता —

वहाँ का दिन सूर्यातप से किस बुरी तरह जलता है पर वहाँ की रात के बारे में एक लोक नायक कह गया है—

'रातड़ली अमरित बरसावे, नींदां का गुटका।'

'मीठो रात अमृत बरसाती है। और हम उसके मीठे-मीठे घूंट भरते हैं।

हाँ, तो आइए यहाँ के लोक-नृत्यों की झाँकी देखें।

अन्य राज्यों के नृत्यों के समान, अथवा यों कहिए कि इस सम्बन्ध में भारत भर में एक समानता सी है कि अधिकांश नृत्य



राजस्थान के 'घूमर' नृत्य में उन्मत्त राजस्थानी युवक युवतियाँ

होली, दीवाली, दशहरा आदि प्रसन्नता के अवसर पर ही होते हैं।

घेर घूमर नृत्य

राजस्थान के यह दो नृत्य बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यह भीलों

के हैं। घेर घूमर को घूमरा अथवा झूमर भी कहते हैं। 'घूमर' विशेषत सौसी महिलाओं का नृत्य है। नृत्य की ताल लय आदि विशेष कठिन और वर्णनीय नहीं पर यह नृत्य विशेषतया घरे में होता है। राजस्थान में गणगौर का त्यौहार बहुत ही प्रसिद्ध है। इसी तरह होली और दिवाली भी—यह त्यौहार 'झूमर' नृत्य के बिना कैसे पूरे हो सकते हैं।

'घेर' होली पर होने वाला जोरदार पुरुष नृत्य है। इसमें पुरुष लम्बी-लम्बी छड़ियाँ लेकर गोल घेरे में नाचते हुए छड़ियाँ आपस में टकराते हैं। इसे 'डंडिया' नृत्य भी कहते हैं। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, और पंजाब में 'टिपरी' नर्तकों की टोलियाँ सभी ने देखी होंगी। इन स्थानों पर यह बहुत प्रसिद्ध नृत्य है, परन्तु महाराष्ट्र में भी 'टिपरी' नाम से यही नृत्य होता है। राजस्थान के इस नृत्य में अन्तर इतना ही है कि नर्तकों के हाथ में छोटे-छोटे डण्डों के स्थान पर छड़ियाँ रहती हैं। इस नृत्य में नर्तक लोग प्राय स्वांग बनाते हैं।

ढोल नृत्य

राजस्थान के झालोर नामक स्थान का यह प्रसिद्ध नृत्य है। इसमें नर्तक एक बहुत बड़े ढोल की ताल पर नाचते हैं। ढोल वाला गोल घेरे के मध्य में रहता है और नर्तक मण्डली उसके चारों ओर।

शेखावटी का गींदड़ नृत्य

राजस्थान में शेखावटी का क्षेत्र काफी प्रसिद्ध है, अपनी समृद्धि के कारण नहीं वरन् अपनी गरीबी और पिछड़ेपन के लिए। होली के दिनों यहाँ भी खुशी का आलम छा जाता और लोग जगह-जगह टोलियाँ बनाकर नाचने लगते हैं। ढोल

बजाने वाला मध्य में रहता है और मण्डली उसके गिर्द नाचती है। यह नृत्य होली से लगभग १५-२० दिन पहले आरम्भ हो जाता है।

अग्नि नृत्य

राजस्थान की नृत्य परिशीलन यात्रा में मुझे एक नाथपंथी



राजस्थानी घूमर लोकनर्तकों का दल अजमेर

साधु मिले। यह बहुत ही मस्त प्राणी थे। यह एक समय भिक्षा लेते थे—साधारण भिक्षा नहीं, केवल घी और दूध को एक ही कमण्डल में। उसी को आग पर धर देते और पी जाते। जितने

दिन मैं उनके साथ रहा, मुझे भी उस श्रेष्ठ भिक्षा का भाग मिलता रहा।

यह लोग गुरु गोरखनाथ के चेले होते हैं और कानों में मोटे-मोटे छल्ले पहने रहते हैं। यह लोग ही इस अग्नि-नृत्य के प्रणेता हैं। आग जलाकर नाथपन्थी उसमें नाचता और कुछ योगिक



क्रियाएँ करता है। कई बार अनेक व्यक्ति भी ऐसा ही नाच करते हैं। इसके साथ भी ढोल बजाया जाता है और गीत गाए जाते हैं।

ख्याल

राजस्थान के ख्याल की परम्परा अपनी ही है। यह एक

नृत्य-नाटक है। सारे राजस्थान भर मे कुचामण और चिड़वा के कुछ खास लोग ही इस नृत्य के उस्ताद हैं। यह लोग दूर-दूर भागों में जाकर आजीविका कमाते और लोगों को खुश करते हैं। ख्याल का कलाकार भले ही अपने फटे-पुराने कपड़ों में हो, भले ही आजीविका के लिए नृत्य करता हो परन्तु उसकी कला को छोटा नहीं कहा जा सकता।

भवाई

मेवाड़ का 'भवाई' नृत्य-नाटक उत्तर-प्रदेश की नौटकी नकल, भगत, पजाब के स्वाँग अथवा सगीत, बगाल की 'जात्रा' तथा गुजरात के 'भवाई' के समान ही है। इसमें कथा को विशेषता दी जाती है। कथा के साथ-साथ गीत एवम् नृत्यों का विशेष प्रचलन है। इस भवाई नृत्य-नाटिका के नृत्यो में राजस्थान का अपना महत्त्व है। गुजरात तथा मेवाड़ के भवाई नृत्य-नाटकों में असमानता होने के उपरान्त भी पर्याप्त समानता है।

कठपुतली नृत्य

कठपुतली के नाच से प्राय सभी भारतवासी परिचित हैं। विशुद्ध रेगिस्तान का मारवाडी इलाका जिसे मारवाड के नाम से ही पुकारा जाता है, कठपुतली नाच के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कठपुतली का नाच बच्चों, बूढ़ों और जवानों सभी के लिए मनोरंजन का साधन है।

इन कठपुतलियों मे पुराना इतिहास छिपा हुआ है। कठपुतली वाला अक्सर राम का यह नाच दिखाता है। आदमी कठपुतलियो को बड़ी चतुराई से नचाता है और उसको 'बोनणी' साथ गाती हुई उसका वर्णन करती जाती है। साथ में यदि कोई लड़का हुआ तो वह ढोलक बजाता हुआ कभी-कभी ऊँची आवाज में ऐलान

करता है।

राजस्थान में नृत्यों की इतनी विविधता है कि उसके अध्ययन के लिए बहुत से श्रम और साधना की आवश्यकता है। इतना ही नहीं यहाँ विभिन्न प्रकार के नृत्य करने वाली जातियाँ भी



राजस्थान के भाव-नृत्यों में भी शूरवीरता का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है।

अनेक हैं। नट, भग जारे, भील, मीणे, साँसी, कंजर, कंजरी, मौमिये, मीणा, कठपुतली वाले, कच्छी घोड़ी वाले, भवाई, भाँड, ढाढ़ी, मिरासी, चमार आदि इन्हीं में से हैं।

इसी प्रकार गीतों में भी विविधता है। एक 'घोड़ो' सुनिए —

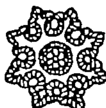
ईडरियो घररायो, ए घोड़ी
मधरो-मधरी चाल।
पीकासो सग आयो, ए मंगजण

हलवां हलवां हाल ।
चौमासो लग आयो ए घोड़ो
धीमां धीमां चाल
मधरी, ठुमराई सचाल ।
थारां बादोजी मोलाव एक घोड़ी,
माऊँ श्रीनिरखण आय
मगेजण धीमां धीमां चाल
मधरी ठुमराई सूं चाल ।

लोकगीतकार कहता है—

इन्द्र महाराज गरज रहे हैं, ए घोड़ी, धीरे धीरे चल ।
ए मंगेतर चौमासा यानी बरसात प्रारम्भ हो गई है,
हौले हौले चल ।
ए घोड़ी चौमासा आ गया
ए बछेरी, जरा ठुमक-ठुमक कर तो चल ।

सचमुच राजस्थानी लोक संस्कृति का खजाना असीम है ।



14

पंजाब



सन् 47 की राजनीतिक क्रान्ति ने देश का विभाजन कर दिया। उसके कारण आदमी बट गए, घर बट गए, द्वार बट गए, पहाड़ बंटे, नदियाँ बंटी, परन्तु एक ऐसा क्षेत्र भी है जहाँ हम अभी तक विभाजन की रेखा नहीं खींच सके—और शायद बहुत समय तक हमारी लोक-संस्कृति की विभिन्न लड़ियाँ उन्हें जोड़े रहें—लोकगीतों की मीठी तान उनमें स्वर फूंकती रहे और लोक-नृत्यों की झंकार उसे गति देती रहे। उन नृत्यों की गति पर, उनकी ताल पर न पाक सरकार को ऐतराज है और न भारत सरकार को ही। ये हैं किसानों की मौज के नृत्य। आज भी पंजाब का किसान जब अपने लहलहाते खेत को सोने की बालियाँ देखता है तो अन्तरिक्ष की ओर हाथ उठाकर आज भी कह उठता है—

सानूं स्यावे मित्तरां दियां खबरां
उड्डजा जानवरा

पंजाब में बड़े-बड़े नगरों के स्थान पर छोटे-छोटे ग्रामों की संख्या अधिक है। पंजाबी जन-साधारण का जीवन अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अनोखा है। वहाँ की पाँच नदियों ने उस प्रदेश को जहाँ अनाज का भण्डार बनाया वहाँ उनके जीवन में एक विचित्र मस्ती, सरसता और सौन्दर्य प्रेम की धाराएँ बहा दीं। यह भाव भी जिस मस्ती से नाचता है वह मस्ती शायद ही और कहीं खोजने पर मिले। अपनी मस्ती को स्वीकार करती हुई कोई कह रही है—

तार नाल तार मिले
मैं मस्तानी रब्बा
मस्ताना यार मिले

मेरे भगवान्। मैं मस्तानी हूँ मुझे कोई मस्त अलबेला प्रीतम मिले—तभी तार से तार, स्वर से स्वर मिलेगा। यही मस्तानी अदा सच्चे प्रेम से भरपूर मस्ती ही पंजाबी लोक-नृत्यों की पृष्ठभूमि है।

पंजाबी लोक-नृत्यों का सरताज है—भंगड़ा। पंजाबियों का कहना है कि जीवन दुःखों से भरा हुआ बाँस की लम्बी लाठी जैसा कठोर है तो भला उसमें जब भी, जो भी खुशी के अवसर आते हैं उन्हें क्यों न दिल खोलकर मनाया जाए ? इसीलिए भंगड़ा पंजाबियों की खुशी का सच्चा प्रतिनिधि है। जितनी मस्ती और तन्मयता इस नृत्य के समय पंजाबियों में पाई जाती है उतनी और किसी में नहीं।

'भंगड़ा' नाच का उत्पत्ति-स्थल कौन-सा है आज इस बहस में पड़ने की जरूरत नहीं क्योंकि आज वह सारे पंजाब का है। आज वह सारी जनता का बन चुका है।

'भगड़ा' शायद भारत के सभी लोक-नृत्यों में सब से अधिक पौरुषेय नृत्य है।



पंजाब का भंगड़ा नृत्य

कृषक, फसल जब पक जाती है, अपनी लहराती हुई फ

को देखकर वह भी मस्त हो जाता है और उस मस्ती के उन्माद में जहाँ उसका मनस उन्मादित हो उठता है वहाँ उसका शरीर भी हिलोरें भरने लगता है। पैर थिरक उठते हैं। उसके शरीर की बोटी-बोटी थिरकती है और वह 'भगड़े' में उन्मत्त हो जाता है।

ढोलक पर थाप पड़ते ही नृत्य आरम्भ हो जाता है। मण्डली के कुछ लोग गाते हैं और बाकी लोग टप्पे के बाद हो-हो करके किलकारियाँ मारते हुए नाचते हैं। पहले टोली का नेता गाता है—

> सावन माह संजिगो आए
> रुडदे माए सीर,
> पुत्त जिन्हां दे मर गए
> टुट्ट गया जग विच्चों सीर
> यारो टुट्ट गया जग विच्चों सीर।
> चीणां इज पड़ींदा
> मोला घम्म मरींदा

'चीणा इज पड़ींदा, मोला घम्म मरींदा', बोली की एक टेक है। इस तक पहुँचते हो नृत्य आरम्भ हो जाता है और मण्डली इनको दो-तीन बार दोहराती हुई मस्ती में कई चक्कर काट जाती है। ढोलक तो नर्तकों में जान फूँकती रहती है और नृत्य अपनी चरम गति पर पहुँच जाता है। ढोलक पर थाप धीमी पड़ने लगी—नृत्य भी उसके साथ-साथ धीमा पड़ता गया और अन्त में समाप्त हो गया। पर इसमें यह पता नहीं चला कि कब और कैसे पाँच-छः घण्टे बीत गए।

सभी लोक-नृत्य धीमी गति से आरम्भ होते हैं, धीरे धीरे इनमें जोश आता है। नृत्यों की गति, ताल और लय के प्रतीक

हैं उनका साथ देने वाले वाद्य-यन्त्र। 'भगड़ा' नाच का मुख्य साथी वाद्य-यन्त्र ढोलक है। आहिस्ता-आहिस्ता ढोलक आरम्भ होती है और ज्यों-ज्यों नर्तक मण्डली टोली के अन्तिम चरणों को दोहराती हुई नाचती है, उधर ढोलक में भी तेजी आती है—साथ ही नर्तक इतनी तेजी से नाचने लगते हैं। यही नृत्य का तेजी का चढ़ाव है और उसके बाद फिर सब कुछ धीमा होने लगता है और अन्त में नृत्य समाप्त हो जाता है। पर यह उतार-चढ़ाव कई बार चलता है।

'भगड़ा' नृत्य के कई भेद हैं जिनमें लुड्डी, झूमर, जुगनी आदि प्रमुख हैं। इनमें थोड़ा-थोड़ा ही अन्तर है। भगड़े में ही लुड्डी, झूमर तथा जुगनी सम्मिलित हो जाती है।

पंजाब की औरतों के 'गिद्धा' नृत्य विवाह आदि के अवसरों को और भी मोहक बना देते हैं। बात यह है कि यह नृत्य विशुद्ध रूप से महिलाओं के ही हैं।

भारत के प्राय सभी राज्यों में महिलाएं विवाह के अवसर पर नाचती-गाती और कुछ ऐसी क्रियाओं को सम्पन्न करती हैं जिनसे इस अवसर में कुछ अधिक रंगीनी आ जाती है। गाने-बजाने का तो सभी जगह रिवाज है, पर पंजाब में औरतें बड़ी देर गए तक ढोलक और घड़े को बजाती हैं। रात के सन्नाटे में ढोलक की ढमढमाक के साथ घड़े की धपधप की आवाज और उनमें घुली हुई पंजाबी युवतियों की जोशदार आवाज कितनी प्यारी लगती है। उस समय लगभग सारे गाँव की औरतें वहाँ आ जुटती हैं—कुछ गाती हैं और कुछ विभिन्न स्वाँग बनाकर नाचती हैं।

गाँव की औरतों को पता चला कि अमुक घर की औरतों ने आज 'गिद्धा' नृत्य का प्रबन्ध किया है। नृत्य करने वालियों को

अपेक्षा देखने वालों को उत्सुकता अधिक है। घर में सम्बन्धियों, मित्रों और परिचितों की जो पत्नियाँ आई हैं, उन्हें 'मेल' कहते हैं—उन्होंने गिद्धा नृत्य का तकाजा कर रखा है।

गिद्धा गिद्धा करे मेलने
गिद्धा पऊ बथेरा।
लोक घरां तो जुड़के आ गए,
ला बुढ्ढा ला डेरा।
झाती मार के वेख उता नूं,
भरया पया बनेरा।
तनूं घुप्प लगदी, सड़े कालजा मेरा।

इससे पता लगता है कि यह लोकगीत स्वयं अपने मुँह से कहता है कि लोग 'गिद्धा' को कितना पसन्द करते हैं। यह गीत या जिसे पंजाबी में 'बोली' कहते हैं गिद्धा के समय भी बोला गाया जाता है। अन्त की दो पंक्तियां या टेक—

तैनूं घुप्प लगदी, सड़े कालजा मेरा।

वस्तुत यह दोनों पंक्तियाँ बोलने के बाद ही 'गिद्धा' आरम्भ होता है।

'गिद्धा' नृत्य का प्रमुख अंग दो हाथ से ताली बजाना है। नर्तक मण्डली एक गोल घेरे में खड़ी हो जाती है और मण्डली की मुखिया-औरत एक 'बोली' गाती है। उसके अन्तिम चरण पर पहुँचते ही सारी मण्डली झूम उठती है और तालियों की सम साम्य ध्वनि होती है। कई बार नर्तकी अपने दोनो हाथों से ताली बजाती है और कई बार अपने आस-पास के नर्तक के हाथ पर हाथ मारकर ताली बजाई जाती है।

जिस प्रकार पंजाबी में बोली पाना कहते हैं, उसी तरह गिद्धा

के लिए 'गिद्धा डालना' कहा जाता है।

आजकल तो गाँव में भी सभी तरह के बाजे पहुँच गए हैं, पर गिद्धा के साथ ढोलक और घड़ा सुनने में जो आनन्द आता है वह और किसी बाजे के साथ नहीं। सम्भव है कि पाठक घड़े को बजाने की बात न समझें, अत: यहाँ यह बताना आवश्यक है कि घड़ा कैसे बजाया जाता है।

अक्सर पंजाब में विवाह के अवसर पर औरतें जो गीत गाती हैं उनके साथ ढोलक और घड़े को ही प्रमुखता दी जाती है। घड़ा बीच में रख एक औरत गीत की तान के साथ उँगली में पहने छल्ले या हाथ में पकड़े कंकर से घड़ा बजाती है। रात के सन्नाटे में ठीक से बजता हुआ घड़ा बड़े-बड़े बाजों को मात करता है।

'गिद्धा' नृत्य विवाह में ही नहीं होता वरन् वास्तव में इसका उद्भव श्रावणी तृतीया से हुआ है। हर ओर हरियाली छाई हुई है। महिलाओं का हृदय श्रावणी तृतीया की हरियाली देखकर मस्त हो उठता है। वे गाँव के बड़े पीपल अथवा बरगद की छाया में मस्त हैं। झूले पड़े हुए हैं, गीत चल रहे हैं। ढोलक की थाप पर, 'गिद्धे' की ताल पर, 'गिद्धा' नृत्य उन्मादित हो रहा है। समग्र मस्ती का आलम छाया हुआ है।

पंजाब का 'जागो' ब्रज के सुन्दर 'चरकला' नृत्य जैसा है। 'चरकला' नृत्य में ब्रजनारी पीतल के कलसे पर एक चकला और चारों ओर गोलाई में प्रज्वलित दीपक रख उसे सिर पर रखकर नाचती है—उसी तरह पंजाब में विवाह के अवसर पर औरतें 'जागो' नृत्य करती हैं और वह भी उस दिन जब बारात कन्या के घर पहुँच चुकी होती है।

रात को वर पक्ष की एक महिला को 'जागो' नृत्य के लिए तैयार किया जाता है। उसके सिर पर रखा जाने वाला घड़ा सजाया जाता है। घड़े के मुँह पर आटा लगाकर बन्द कर देते हैं और उस पर पाँच-छः दीपक रख दिए जाते हैं। अन्य स्त्रियाँ घड़े वाली को घेर कर गाँव की चौपाल में ले आती हैं। घड़े वाली औरत को बीच में कर शेष औरतें उसके चारों ओर नृत्य करती हैं। उस समय नर्तकियाँ निम्न गीतों की पंक्तियाँ गाती हैं—

करमया भैणां जगा ले वे,
जागो आई है।
चुपकर बीबी नी मसां सुआई है,
लोरी दे के पाई है।
उठ खड़ूगी, रिहाड करूगी,
अड़ी करूगी।

हिन्दी रूपान्तर—

अरी बहन अपन करम जगाले,
जागो आई है।
अरी बीबी, चुपकर उसे बहुत
मुश्किल से सुलाया है,
लोरी देकर सुलाया है।
यदि जग गई तो जिद करेगी,
अड़ी करेगी।

आप अन्दाजा लगाइए कि रात के सन्नाटे में गाँव की अँधेरी चौपाल में जगमगाते हुए दीपक और गाती हुई पंजाबी नारियों का कण्ठ क्या समाँ बाँधता होगा।

पंजाब के गिद्धा, भंगड़ा और जागा आदि नृत्यों के साथ जो

गीत गाए जाते हैं वे बोली, टप्पे या दोहे कहलाते हैं। इन नृत्यों में प्रायः बोली या टप्पा का ही प्रचलन है। जिस प्रकार उत्तर प्रदेश के नर्तक 'गीत गाना' कहते हैं उसी तरह पंजाब के नर्तक या गायक 'बोली पाना' कहते हैं। बोली बहुत ही रसीले गीत हैं—जिनसे प्रायः दो अर्थ निकलते हैं। गायक वस्तुतः कहता कुछ है पर उसका गूढार्थ या भावार्थ कुछ और ही होता है। वैसे देखने-सुनने में वह अर्थ भी ठीक होता है, पर व्यंजना दूसरे ही अर्थ में होती है। सुनिए

से ही दे कबूतर गोले
ताड़ी मारी उड़ जानगे।

अर्थात् यह जंगली कबूतर हैं, ताली बजाने से उड़ जाएँगे— इसका दूसरा भाव यह है कि परदेसी से प्रीत लगाना ठीक नहीं— यह तो जरा से कष्ट होने पर या अपना मतलब निकल जाने पर अपने घर भाग जाएँगे।

अनेक गीतों या बोलियों में समाज की बुराइयों पर कड़ा व्यंग्य होता है। कोई महिला अपने छोटे दिनों की याद करके सच्ची बात कह रही है—

बोदी वाला तारा चढ़ दा
घर घर होण विचारां,
कुछ लुट्ट लई मैं पिंड दे पैंचा
कुछ लुट्ट ली मैं सरकारां
गहने सारे सीरयां लै लए
जोबन लै गया यारां
मेड़ा बारदियां
बेकदरयां दियां मारां

15

हिमाचल प्रदेश



हिमाचल प्रदेश तथा पंजाब के अन्य पर्वतीय इलाके भी अपने सामूहिक नृत्यों के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ के लोक-नृत्य उसी प्रकार सरल हैं जिस तरह यहाँ के आदमी। इन लोगों के नृत्य के लिए यह आवश्यक नहीं कि कोई धार्मिक अवसर अथवा कोई त्योहार हो। साधारणतया इस प्रदेश में गद्दी चरवाहे और किसान रहते हैं। यह लोग कभी भी मस्ती में आकर नाच सकते हैं और नाचते हैं। यदि बहुत दिन से बादल घिरे हैं, सरदी है तो यह लोग सूरज देवता की उम्मीद में ही—

आ रे धूपड़ी छाया पारे हे
मनचित देखी खुशी लाया हे।

आदि गीत की पंक्तियाँ गाते हुए नाचना आरम्भ कर देंगे। या कोई और खुशी का अवसर हो तो वे लोग—

आरे सिमला पारे फागू,
इस छोरी नूँ सारा सिमला लागू,

आदि मनोरंजक गीत गाकर ही अवसर को और रंगीन बना देते हैं।

चम्बा, महासू के चरवाहे भी इसी तरह की अनोखी नृत्य अदाओं से वातावरण को मधुर बना देते हैं। उनके नृत्यों में गांव गांव घूमकर चूडियाँ बेचने वाले बनजारे-व्यापारी का वर्णन रहता है। यह बात उनके गीतों में स्पष्ट है—

पायरी था आया बनजारा
सिरा पर बगडीया भारा।

इस प्रदेश में अनेक नृत्य रामचन्द्र जी के जीवन पर आधारित हैं। वस्तुत कुल्लू घाटी में तो विजयदशमी से लेकर दिवाली तक नृत्यों का सिलसिला ही चलता रहता है। चम्बा में इन दिनों विशेष समारोह होते हैं। इन्हें दिवाली नृत्य कहते हैं। इन दिनों रामचन्द्र जी, जिन्हें इधर के लोग रघुनाथ जी कहते हैं, की मूर्ति का जलूस निकलता और मन्दिरों में पुन इनकी स्थापना होती है और चाँदनी रातों में घण्टों बल्कि सारी-सारी रात घाटियाँ नृत्य और गीतों से गूंजती रहती हैं। पहले जब इस प्रदेश में छोटे छोटे राज्य थे उन दिनों तो यह सारे समारोह राजाओं के संरक्षण में होते थे और भैंसे की बलि भी दी जाती थी—पर आज ऐसा नहीं। हाँ, एक बात जो उस समय भी थी आज भी वैसी ही चली आ रही है, वह है नृत्यों का आधार रामायण का विचित्र रूप।

यों तो भारत के सर्वसाधारण ने रामायण को अपने रूप में ढाला है—परन्तु जैसे भी हों राम के जो अनेक रूप प्रचलित हैं शायद ही दूसरे किसी अवतारी पुरुष के हों। भारत के सभी किसान रामजी को अपना सहायक कहते और मानते हैं—वे अपने

कामों की कल्पना भी उनमें करते हैं। उड़ीसा का किसान कहता है—

१- राम बाँध हल लक्ष्मन देवे माई,
माऊरो कि करिबे जे।
सीता माँ देवे बाई जे।

हिन्दी रूपान्तर—

"राम ने हल बाँधा,
लक्ष्मण जुताई करेंगे
और सीताजी के लिए काम ही
क्या है, वे बीज बो देंगी।"

इसी तरह जहाँ हमारे देश के अधिकांश मृत्य खेती से सम्बन्धित हैं वहाँ किसानों ने अपने देवी-देवताओं को भी अपने ही रूप में ही देखा है। हिमाचल का गद्दी चरवाहा भी रामकथा को अपना ही रूप देता है। उसके गीतों में तो सारी रामकथा आ जाती है परन्तु उसमें जगह-जगह उनकी मस्ती फूटो पड़ती है। एक प्रसंग देखिए। राम कहते हैं—

जामा मेरिया हणुमा पूता
लगामा मेरिया सिये का पता।

हनुमान कहते हैं—

तेरी सीया जाणू न परेणू

इसी तरह कथनोपकथन चलता है—

सोम के मेरिमा मुंदड़ा देऊ

इसी तरह आगे चलकर गद्दी चरवाहे कथा में अपना पुट देते हुए हनुमान के मुख से कहलवाते हैं कि रामचन्द्रजी ने तो पन्द्रह रानियों से विवाह कर लिया अब तुम्हारा नम्बर तो

सोलहवाँ है।

वर्ष में एक बार रामचन्द्रजी की मूर्ति को नदी में स्नान



हिमाचल प्रदेश का 'घुघती' नृत्य

भी करवाया जाता है। उस समय के समारोह को 'पोयस जात्रा' कहा जाता है। इन दिनों मूर्ति के सम्मान में खूब नाच होता है।

घुघती नाच—

पहाड़ी हिमाचल के चरवाहों में घुघती नाच भी बहुत प्रसिद्ध है। घुघती एक पक्षी होता है। वह गुटरगूं-गुटरगूं करता हुआ दाना चुगता हुआ गोल घेरे में नाचता-सा है। यह नृत्य भी इसी तरह का होता है और नर्तक गोल घेरे में नाचते हैं। औरतें आदमियों के साथ नहीं नाचतीं। वे नाचती हैं पर अलग टोली में। नृत्य के साथ यह गीत चलता है—

शुणो रे लोगा घुघते
नाटी लागी बड़ी जुगते

लोगो घुघती का गाना सुनो। यह बड़े यत्न से नाच रही है। इसी तरह आगे गीत चलता है। किसान नर्तक कहते हैं कि यह घुघती तो खेत में से बीज भी खा गई, इसे तो अब मारना ही पड़ेगा।

लावलो बगावलो—

हिमाचल के चरवाहों, किसानों का यह नृत्य बड़ा मोहक होता है। यों तो हिमाचल के सभी मुख्य नृत्यों मे नर्तक नीचे को झुकते और हाथ हवा में लहराते हुए ऊपर को उठाते हैं—पर इस नृत्य में तो ऐसा मालूम होता है कि जैसे पहाड़ी झरनाकल-कल का मधुर स्वर भर रहा हो। इसके साथ—

बेलुआ, बेलुआ बेलू मुण्डारु सिरुसि जांदा,
नालो-नाली जांदा मुण्डा बसरी बजांदा जांदा,

आदि गीत चलता है।

यह नृत्य फसलें पकने, ब्याह-शादियों या दूसरे सुखों के

अवसरों पर होता है। मडलो जुट जाती है और नाच आरम्भ हो जाता है।

शबरू—

हिमाचल प्रदेश में लगभग प्रत्येक उत्सव एवम त्योहार पर यह 'शबरू' नृत्य होता है। सवप्रथम वाद्य-यन्त्रों सहित सगीतज्ञ ढोल एवम् नरसिंहा सहित दर्शकों के समक्ष आते हैं। इसके पश्चात् नर्तक महिलाएँ अपनी चटकीली रगीन वेशभूषा में आ उपस्थित होती हैं। ज्योंही पुरुष आते हैं त्योंही एक गोल घेरा बन जाता है। एक पुरुष एक स्त्री, फिर एक पुरुष एक स्त्री इस प्रकार हाथ मे हाथ डालकर ये नृत्य करते हैं।

खार—

दशहरा एवम् दिवाली के अवसर पर 'खार' नृत्य करने की परम्परा भी परम पुरातन है। चन्द्राकार, अर्द्ध चन्द्राकार, द्वितीया के चन्द्र को भाँति विभिन्न प्रकार से घेरे बनाकर यह नृत्य किया जाता है।

जोगर्डा—

'जोगर्डा' नृत्य अपनी तीव्र गति के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस नृत्य के साथ एक प्रमगीत मुखरित होता रहता है जिसमें हृदय की आन्तरिम पीड़ा सन्निहित होती है।

हिमाचल के नृत्यों के साथ नरगा, जिसे नगाड़ा कह सकते हैं, बजता है और शहनाई तथा करताल नृत्य के मुख्य सहायक वाद्य-यन्त्र हैं।

★

16

कश्मीर



भारत के प्रमुख नृत्यो में मनमोहक कश्मीर के नृत्यों की झाँकी देना जरूरी सा ही है। कश्मीर को जहाँ स्वयं प्रभु ने सजाया और सँवारा है—यहाँ के झरनों, यहाँ की हरी घाटियाँ, सुन्दर फूलों के मैदानों, बरफ से ढके प्रदेशो को देखकर ही कवि ने कहा—

> अगर फिरदौस बररूए जमी अस्त
> हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमी अस्त।

धरती पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है यहीं है।

कश्मीर के लोक-नृत्य इस बात की पुष्टि ही करते हैं।

कश्मीर में ही क्या सारे भारतीय जीवन में मेलों का बड़ा स्थान है। इसमें जहाँ व्यापार की वृद्धि होती है वहाँ ये समाज और संस्कृति के पोषक भी हैं। कश्मीर में मुस्लिम सन्तों, औलिया लोगों की समाधियों-दरगाहों पर बड़े-बड़े मेले लगते हैं। इसी तरह हिन्दुओं के भी खीरभवानी, हरिपर्वत और वरीनाग के

मेले भी कम प्रसिद्ध नहीं।

बचनगमा—इन मेलों में नाचने वाले कई दल आते हैं। इन्हें 'बचनगमा' कहते हैं। यह लोग भारत के अन्य अनेक प्रदेशों के लोगों की तरह ही पेशेवर नाचने गाने वाले होते हैं। इन नृत्यों में लड़के को लड़की के कपड़े पहनाकर कई स्वाँग बनाए जाते हैं और साथ मण्डली गाती है। मण्डली के गायकों का



कश्मीरी लोक-संगीतकारों का एक समूह

र बादि

मुख्य वाद्य-यन्त्र रबाब होता है। वैसे सारंगी भी रहती है। इनके पास एक और मजेदार परन्तु सीधा-सादा वाद्य-यन्त्र भी होता है—वह है 'दहरा'। एक लोहे की सलाख पर लोहे के ही

छल्ले पड़े रहते हैं। सन्तास को हिलाने से विचित्र प्रकार की आवाज होती है।

रोफ-नृत्य—

रमजान के दिनों मुस्लिम औरतें रात को खाना खाने के बाद एक धार्मिक नृत्य करती हैं—इसे 'रोफ' नृत्य कहते हैं। स्त्रियाँ दो पंक्तियों में खड़ी होती हैं। दोनों पंक्तियाँ नाचती-कूदती और साथ-साथ कदम बढ़ाती हुई एक-दूसरी की ओर बढ़ती हैं और फिर इसी तरह पीछे हट जाती हैं। ईद के दिन तो यह नृत्य अपनी चरमसीमा पर होता है। उस दिन तो नर्तकियों के पाँव जमीन पर नहीं पड़ते—क्योंकि ईद कितनी खुशी का त्योहार है—इसे सभी भारतीय अच्छी तरह जानते और समझते हैं।

मुस्लिम औरतें विवाह पर 'बिसमिल्लाह' करके नाच आरम्भ करती हैं और हिन्दू औरतें 'शुफलम्' कहकर अर्थात शुभफल की कामना करके नृत्य-गीत आरम्भ करती हैं।

कश्मीर के सीमान्त प्रदेश लद्दाख आदि में भी नृत्यों की कमी नहीं। लद्दाख में नृत्योत्सव जून में होते हैं—जब इतनी अधिक सरदी नहीं रह जाती। यह सामूहिक नृत्य होते हैं। यहाँ के लोगों का यह विचार है कि नृत्यों द्वारा देवताओं का अभिनन्दन करने के कारण पापों से बचाव होता है। अच्छी फसल की कामना के लिए भी सामूहिक नृत्य होते हैं और धार्मिक उत्सवों पर तो होते ही हैं।

सामूहिक नृत्यों में लोग घेरे में नाचते हैं। या तो वे एक-दूसरे के हाथ में हाथ डाले रहते हैं और यदि वे आगे-पीछे खड़े हों तो एक-दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर नाचते हैं।

लद्दाख के गीत बड़े विचित्र और धार्मिक पुट लिए रहते हैं जिसमें महत्त्व शक्ति की ओर संकेत रहता है। एक गीत का भाव यह है—

आकाश में तीन वस्तुएँ सजी हैं। सूर्य, चन्द्रमा और तारे। सबसे बड़ा है सूरज, दूसरा है चन्दा और तीसरा है लाल सितारों का झुरमुट।

पंजाब के समीप के प्रदेश जम्मू में भंगड़ा नृत्य प्रचलित है जो फसल की कटाई का नृत्य माना जाता है, ऊधमपुर तथा दौदा के समीप इसी नृत्य को 'कुड' नृत्य कहा जाता है। यह नृत्य धीमी गति से प्रारम्भ होता है तथा धीरे-धीरे अपनी गति में तीव्रता लाता है। जब यह अत्यधिक तीव्र गति को प्राप्त करता है तो समाप्त हो जाता है। ऊधमपुर के लोग चूड़ीदार पजामा, खिल्का, पटका तथा पगड़ी पहनकर इसे नाचते हैं और दौदा के लोग ऊनी कपड़ा लपेटकर नृत्य करते हैं।

सचमुच महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ठीक ही कहा है—"शहरों में कृत्रिम दीपकों का प्रकाश है। इस शहरी प्रकाश के साथ सूर्य, चन्द्रमा और सितारों का जरा भी सम्बन्ध नहीं।" सच है इस युग में इनका यदि कुछ सम्बन्ध है तो गाँवों से—और जीवन के आनन्द से आत प्रोत होकर नृत्य-गीत हमारे गाँवों में ही अपनी मस्ती बिखेरते हैं।



17

मैसूर



मैसूर राज्य का लोक विभिन्न प्रकार से अपना मनोरंजन करता है। नृत्य तथा यक्षगण एक प्रकार का नृत्य नाटक वहाँ बहुत प्रसिद्ध है। 'यक्षगण' ग्रामीण जनता के मनोरंजन के लिए प्रस्तुत किया जाता है। जब ग्रीष्मकालीन फसल कट जाती है तो खुली वायु में 'यक्षगण' प्रस्तुत किया जाता है।

विभिन्न प्रकार के नृत्य इस राज्य में प्रचलित हैं जो कि विभिन्न धार्मिक तथा सामाजिक अवसरों पर किए जाते हैं ताकि राज्य के ग्रामीण जीवन में रंगीनी एवम् दिलचस्पी पैदा हो सके।

घालाफत नृत्य—

यह कोडवा कबीले का अति प्रसिद्ध नृत्य है। यह फसल कटने पर अथवा त्योहारों आदि खुशी के अवसरों पर किया जाता है। जो मनुष्य इस में भाग लेते हैं, एक लम्बा कामा ओवरकोट पहनते हैं जिसे कुपोमा कहते हैं। वह एक विशेष प्रकार की श्वेत पगड़ी भी पहनते हैं। उनके हाथ में तलवारें होती हैं।

यह नृत्य अपनी रंगीन वेशभूषा एवम् गीत के लिए प्र



गोहला कबीले का बालाफत नृत्य

है। नृत्य के साथ वादन भी होता है।